अगस्त–2021
वर्ष–85 | अंक–8 | ₹–19 प्रति | ₹–220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

5 शांतिकुंज का आधार : सादा जीवन उच्च विचार
30 नर और नारी एक समान
42 क्रांति के प्रणेता– श्री अरविंद
49 कोरोना काल में जीवन प्रबंधन

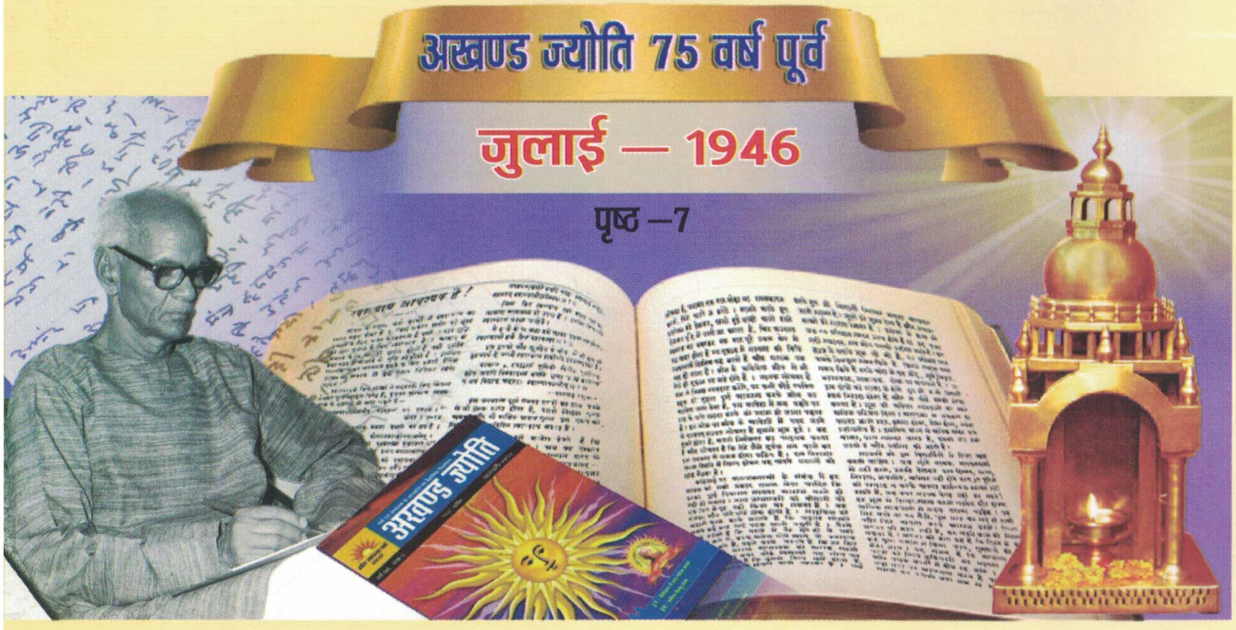

विचारणीय तत्त्व

वेद की अपेक्षा सत्य, सत्य की अपेक्षा इंद्रिय निग्रह, इंद्रिय निग्रह की अपेक्षा दान, दान की अपेक्षा तपस्या, तपस्या की अपेक्षा वैराग्य, वैराग्य की अपेक्षा आत्मज्ञान, आत्मज्ञान की अपेक्षा समाधि और समाधि की अपेक्षा ब्रह्मप्राप्ति उत्कृष्ट है।

ज्ञान ही परमब्रह्म है एवं साधना सर्वोत्तम मार्ग। जो व्यक्ति निगूढ़ भाव से ज्ञान तत्त्व को जानने में समर्थ होता है, उसकी समस्त कामनाएँ परिपूर्ण हो जाती हैं।

काल समस्त प्राणियों को विनष्ट कर देता है, किंतु जिसके प्रभाव से वह काल भी विनष्ट हो जाता है, उसको कोई भी नहीं जान सकता। वह परम स्वरूप परमात्मा ऊपर, बीच में, नीचे व निर्जन स्थानों में नहीं दिखाई पड़ता है; क्योंकि वह सारे लोक उसी के अंतस्थ हैं, उसका बहिर्भाग कुछ नहीं है।

जिस पुण्यात्मा पुरुष ने कभी कोई पाप नहीं किया, उसकी अपेक्षा घोर पापी के पश्चात्ताप की महिमा कहीं अधिक है; क्योंकि जिन्होंने पापमय जीवन की कटुता का कभी अनुभव नहीं किया; उनके लिए दूर रहना कुछ कठिन कार्य नहीं है।

प्रार्थना का द्वार किसी समय खुला रहता है और किसी समय बंद, पर पश्चात्ताप का द्वार तो सदा अनावृत रहता है। आज ही तुम अपने पापों का प्रायश्चित कर लो; क्योंकि कल तुम्हारी मृत्यु भी हो सकती है।

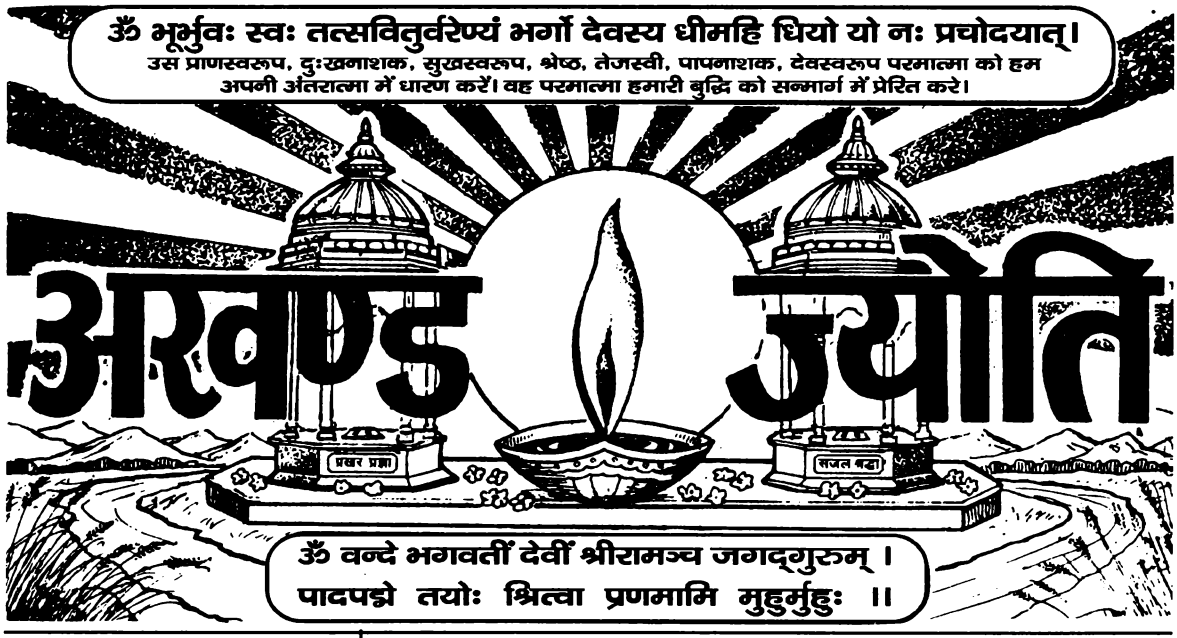

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940,2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 85
अंक	: 08
अगस्त	: 2021
श्रावण-भाद्रपद	: 2078
प्रकाशन तिथि	: 01.07.2021

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-

आजीवन (बीसवर्षीय)
भारत में : 5000/-

सत्संकल्प

शांतिकुंज की स्थापना का आधार, युग निर्माण के जिस महती उद्देश्य को लेकर के हुआ है, उसका बीज सत्संकल्प को कहा जा सकता है। परमपूज्य गुरुदेव ने शांतिकुंज को एक ऐसे मॉडल के रूप में विकसित किया है, जिसका संदर्भ लेकर एवं जिसका उदाहरण देकर संपूर्ण विश्व में क्रांति के वैसे ही अध्याय लिखे जा सकें। यदि संपूर्ण विश्व में क्रांति के बीजों को बोना हो तो उनकी एक पौधशाला कहीं तैयार करनी जरूरी होती है। शांतिकुंज को इसी क्रम में महाकाल की पौधशाला या नर्सरी के रूप में देखे जाने की जरूरत है एवं परमपूज्य गुरुदेव द्वारा लिखित सत्संकल्प को इसी पौधशाला के आधारभूत बीज के रूप में पढ़े जाने की जरूरत है।

चुनावों का क्रम चलता है तो चुनाव में भाग ले रही राजनीतिक पार्टियों को अपने-अपने घोषणापत्र या मेनिफेस्टो जनसामान्य के सम्मुख प्रदर्शित करने होते हैं, ताकि जनता इस बात का निर्धारण कर सके कि इस विचारधारा का अंतिम उद्देश्य क्या है? परमपूज्य गुरुदेव द्वारा लिखित सत्संकल्प को नवयुग के घोषणापत्र के रूप में जाना जा सकता है। इसीलिए युगऋषि ने हममें से प्रत्येक के लिए यह दिशा निर्देश दिया कि इसे एक नित्य पूजा-प्रक्रिया की तरह पढ़ना चाहिए और दोहराने के साथ-साथ आत्मसात् करने का प्रयत्न भी करना चाहिए। युग निर्माण सत्संकल्प का उद्देश्य एक सार्थक उद्देश्य के लिए सक्रिय होने को सुनिश्चित कर देने से है। इस घोषणापत्र में सभी भावनाएँ धर्म और शास्त्र की आदर्श परंपरा के अनुरूप एक व्यवस्थित ढंग से सरल भाषा में संक्षिप्त शब्दों में सजा दी गई हैं। इसके अनुसार व्यक्ति निर्माण ही युग निर्माण का आधार है। ❑

विषय सूची

- आवरण—1 — 1
- आवरण—2 — 2
- सत्संकल्प — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  शांतिकुंज का आधार
  सादा जीवन उच्च विचार — 5
- मितभाषण और मौन का महत्त्व — 7
- सत्संग से तरते हैं जीव और जंतु भी — 9
- **पर्व विशेष**
  रक्षाबंधन का पवित्र प्रतीक—रक्षासूत्र — 11
- आहार-विहार का अध्ययन है आयुर्वेद — 13
- दान से देवत्व की ओर — 15
- आत्मिक ज्ञान है व्यक्तित्व का आधार — 19
- बुद्धत्व का करो जागरण — 21
- समयातीत है समाधि — 22
- एक महत्त्वपूर्ण सच्चाई है मरणोत्तर जीवन — 24
- इतनी आसान नहीं जीवन की उत्पत्ति — 26
- आत्मबोध की प्राप्ति में है
  मानव जीवन की गरिमा — 27
- नर और नारी एक समान — 30
- बच्चों की संस्कारशाला है परिवार — 35
- ग्लानि और हीनता से कुछ ऐसे उबरें — 36
- **चेतना की शिखर यात्रा—227**
  कुछ अदृश्य पन्ने — 38
- वेदांत का शाश्वत संदेश — 41
- **15 अगस्त, जन्मदिवस पर**
  क्रांति के प्रणेता—श्री अरविंद — 42
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—148**
  सामाजिक संस्थाओं में मीडिया प्रबंधन — 45
- नारी का सम्मान जहाँ है
  संस्कृति का उत्थान वहाँ है — 47
- कोरोना काल में जीवन प्रबंधन — 49
- **युगगीता—255**
  निरर्थक मनोरथों की पूर्ति की
  दौड़ में उलझते लोग — 51
- वर्षा से जुड़े कुछ रोचक तथ्य — 53
- जनचेतना ही जल संस्कृति को
  बचा पाएगी — 55
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—1**
  वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता (पूर्वार्द्ध) — 57
- **विश्वविद्यालय परिसर से—194**
  विषमताओं को सौभाग्य में बदलता
  विश्वविद्यालय — 63
- **अपनों से अपनी बात**
  साधना सत्रों की भूमि शांतिकुंज — 64
- लक्ष्य की याद (कविता) — 66
- आवरण—3 — 67
- आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

इंडिया गेट स्थित वार मेमोरियल (अमर जवान ज्योति)

अगस्त-सितंबर, 2021 के पर्व-त्योहार

बुधवार	04 अगस्त	कामिका एकादशी	गुरुवार	09 सितंबर	हरितालिका
रविवार	08 अगस्त	हरियाली अमावस्या	शुक्रवार	10 सितंबर	श्री गणेश चतुर्थी
शुक्रवार	13 अगस्त	नाग पंचमी	शनिवार	11 सितंबर	ऋषि पंचमी
शनिवार	14 अगस्त	सूर्य षष्ठी	रविवार	12 सितंबर	सूर्य षष्ठी/बलदेव छठ
रविवार	15 अगस्त	स्वतंत्रता दिवस/ तुलसी जयंती	शुक्रवार	17 सितंबर	जलझूलनी एकादशी/विश्वकर्मा जयंती
बुधवार	18 अगस्त	पवित्रा एकादशी	रविवार	19 सितंबर	अनंत चतुर्दशी
रविवार	22 अगस्त	श्रावणी पूर्णिमा/ रक्षाबंधन	सोमवार	20 सितंबर	वंदनीया माताजी महाप्रयाण दिवस/महालयारंभ
सोमवार	30 अगस्त	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी	शनिवार	25 सितंबर	वंदनीया माताजी जयंती
शुक्रवार	03 सितंबर	अजा एकादशी	गुरुवार	30 सितंबर	मातृनवमी
सोमवार	06 सितंबर	कुशाग्रहणी अमावस्या			

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। ***—संपादक***

शांतिकुंज का आधार सादा जीवन उच्च विचार

आज समाज के सामने असंख्य विकृतियों और व्यक्ति के सामने असंख्य समस्याओं के अंबार लगे हुए हैं। पतन-पराभव के संकट, विग्रह के वातावरण, अराजकता-असमंजसों का निवारण-निराकरण इन्हीं दिनों किया जाना आवश्यक है। अगणित प्रकार की सुविधा-संपदाओं का अभिवर्द्धन भी होना है, पर उन सबके लिए मानवी चेतना का स्वस्थ, समुन्नत होना आवश्यक है। यदि भूमि पर, साधनों पर आधिपत्य जमाकर बैठे हुए अथवा योजनाएँ बनाने वाले लोग विकृत मस्तिष्क के होंगे, तो उलझी हुई समस्याओं का समाधान करना तो दूर, वे विग्रह और ध्वंस ही खड़े करेंगे।

मस्तिष्क विकृत, हृदय निष्ठुर, रक्त दूषित, पाचन अस्त-व्यस्त हो, शरीर के अंग-प्रत्यंगों में विषाणुओं की भरमार हो, तो फिर वस्त्राभूषण की भरमार, अगर-चंदन का लेपन और इत्र-फुलेल का मर्दन बेकार है। वस्त्र-आभूषण जुटा देने और तकिये के नीचे स्वर्णमुद्राओं की पोटली रख देने से भी कुछ काम न चलेगा। जबकि स्वस्थ, सुडौल होने के कारण सुंदर दीखने वाला शरीर गरीबी में भी हँसती-हँसाती जिंदगी जी लेता है, आएदिन सामने आती रहने वाली समस्याओं से भी निपट लेता है और किसी-न-किसी प्रकार, कहीं-न-कहीं से प्रगति के साधन भी जुटा लेता है। वस्तुतः महत्त्व साधनों या परिस्थितियों का नहीं, बल्कि व्यक्तिगत स्वास्थ्य, प्रतिभा और दूरदर्शिता का है। यह सब उपलब्ध रहे, तो फिर न अभावों की शिकायत करनी पड़ेगी और न व्यवधान सामने आने पर अभ्युदय में कोई बाधा पड़ेगी।

वर्तमान युग की समस्त समस्याओं का समाधान एक ही है—सादा जीवन और उच्च विचार। इस सिद्धांत को अपनाते ही प्रस्तुत असंख्य समस्याओं में से एक के भी पैर न टिक सकेंगे। जब हर व्यक्ति ईमानदारी, समझदारी और बहादुरी की नीति अपनाकर श्रमशीलता, सभ्यता और सुसंस्कृति को व्यावहारिक जीवन में स्थान देने लगेगा, तो देखते-देखते समस्याओं के रूप में छाया अंधकार मिटता चला जाएगा।

गुजारे के लायक इतने साधन इस संसार में मौजूद हैं कि हर शरीर को रोटी, तन को कपड़ा, हर सिर को छाया और हाथ को काम मिल सके। तब गरीबी-अमीरी की विषमता भी क्यों रहेगी? जाति-लिंग के नाम पर पनपने वाली विषमता का अनीतिमूलक और दुःखदायी प्रचलन भी क्यों रहेगा? औसत नागरिक स्तर का जीवन स्वीकार कर लेने पर सुविस्तृत खेतों, देहातों में रहा जा सकता है और वायुमंडल-वातावरण को प्रफुल्लता प्रदान करते रहने, संतुष्ट रहने में सहायक हुआ जा सकता है।

प्राचीनकाल की सुसंस्कृत पीढ़ी इसी प्रकार रहती थी और मात्र हाथों के सहारे बन पड़ने वाले श्रम से जीवनयापन के लिए सभी आवश्यक साधन सरलतापूर्वक जुटा लेती थी। न प्रदूषण फैलने का कोई प्रश्न था और न शहरों की ओर देहाती प्रतिभा के पलायन का कोई संकट। न गाँव दरिद्र, सुनसान एवं पिछड़े रहते थे और न शहर गंदगी, घिच-पिच और असामाजिकता के केंद्र बनते थे। मनुष्य स्नेह और सहयोगपूर्वक रहने के लिए पैदा हुआ है; लड़ने, मरने और त्रास देने के लिए नहीं।

यदि आपा-धापी न मचे, तो फिर एकता और समता में बाधा उत्पन्न करने वाली असंख्य कठिनाइयों में से एक का भी अस्तित्व दृष्टिगोचर न हो। युद्ध प्रयोजनों में जितनी संपदा, शक्ति और प्रतिभा का नियोजन हो रहा है, उतने को यदि बचाया जा सके और उन समूचे साधनों को नवसृजन प्रयोजनों में लगाया जा सके, तो समझना चाहिए कि इक्कीसवीं सदी के उज्ज्वल भविष्य के संबंध में जो कल्पनाएँ की गई हैं, वे सभी नए सिरे से, नए ढाँचे में ढलकर साकार हो जाएँगी।

तथाकथित बुद्धिमान और शक्तिशाली लोग इन दिनों की समस्याओं और आवश्यकताओं को तो समझते हैं, पर उपाय खोजते समय यह मान बैठते हैं कि यह संसार मात्र पदार्थों से सजी पंसारी की दुकान भर है। इसकी कुछ चीजें इधर-की-उधर कर देने, अनुपयुक्त को हटा देने और उपयुक्त को उस स्थान पर जमा देने भर से काम चल जाएगा। इन दिनों सारे प्रयास इसी ओर हैं।

आज यद्यपि विश्व की मूर्धन्य प्रतिभाएँ हर समस्या को अलग-अलग समस्या मानकर उनके पृथक-पृथक समाधान खोजने और उपचार खड़े करने के लिए भारी माथापच्ची कर रही हैं, पर उनसे कुछ बन नहीं पा रहा है। न अस्पतालों, चिकित्सकों, औषधियों, आविष्कारों पर असीम धनशक्ति-जनशक्ति लगाने से रोग काबू में आ रहे हैं और न पुलिस, कानून, कचहरी, जेल आदि अपराधों को कम करने में समर्थ हो रहे हैं। अचिंत्य चिंतन, दुर्व्यसनों आदि के रहते बैंकों के भारी कर्ज और ढेरों अनुदान बाँटने पर भी गरीबी की समस्या का वास्तविक हल हाथ लग नहीं रहा है।

अगले दिनों परिस्थितियाँ बदलेंगी। जनमानस यह देखकर रहेगा कि अगणित समस्याएँ उत्पन्न कहाँ से होती हैं? हमें उस रानी मक्खी को खोजना है, जो आएदिन असंख्यों अंडे-बच्चे जनती है, जिनके भरण-पोषण में छत्तों की समस्त मधुमक्खियों के लगे रहने पर भी समस्याएँ जहाँ-की-तहाँ बनी रहती हैं। मनुष्यता समय-समय पर ऐसी आश्चर्यजनक करवटें लेती रही है, जिसके अनुसार देवमानवों का नया वसंत—नई कलियाँ और नए फल-फूलों की संपदा लेकर सभी दिशाओं में मुस्कराता दीख पड़ता है।

महामानवों, देवपुरुषों, मनीषियों, सुधारकों, सृजेताओं का ऐसा उत्पादन होता है, मानो वर्षा ऋतु ने अगणित वनस्पतियों और जीव-जंतुओं की नई फसल उगाने की सौगंध खाई हो। अगले ही दिनों नए सृजेताओं की एक नई पीढ़ी शांतिकुंज में से ही विकसित होगी, जिसके सामने अब तक के सभी संतों, सुधारकों और शहीदों के पुरुषार्थ छोटे पड़ जाएँगे।

जब आवेश की ऋतु आती है तो जटायु जैसा जीर्ण-शीर्ण भी रावण जैसे महायोद्धा के साथ निर्भय होकर लड़ पड़ता है। गिलहरी श्रद्धामय श्रमदान देने लगती है और सर्वथा निर्धन शबरी अपने संचित बेरों को देने के लिए भावविभोर हो जाती है। यह अदृश्य में लहराता दैवी प्रवाह है, जो नवसृजन के देवता की झोली में समयदान, अंशदान ही नहीं, अधिक साहस जुटाकर हरिश्चंद्र की तरह अपना राजपाट और निज का, स्त्री-बच्चों का, शरीर तक बेचने में आगा-पीछा नहीं सोचता। दैवी आवेश जिस पर भी आता है, उसे बढ़-चढ़कर आदर्शों के लिए समर्पण कर जीवन गुजारे बिना चैन नहीं पड़ता।

यही है महाकाल की वह अदृश्य अग्निशिखा, जो चर्मचक्षुओं से तो नहीं देखी जा सकती है, पर हर जीवंत व्यक्ति से कुछ महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ कराए बिना उसे छोड़ने वाली नहीं है। ऐसे लोगों का समुदाय जब मिल-जुलकर अवांछनीयताओं के विरुद्ध निर्णायक युद्ध छेड़ेगा और विश्वकर्मा की तरह नई दुनिया बनाकर खड़ी करेगा, तो अंधे भी देखेंगे कि कोई चमत्कार हुआ। पतन के गर्त में तेजी से गिरने वाला वातावरण किसी वेधशाला से छोड़े गए उपग्रह की तरह ऊँचा उठकर अपनी नियत कक्षा में द्रुतगति से परिभ्रमण करने लगेगा और यह तभी संभव है, जब शांतिकुंज के आधार—सादा जीवन-उच्च विचार को सर्वत्र क्रियान्वित किया जाएगा। ❑

भगवती सरस्वती के हाथ में वीणा है। उनका वाहन मयूर है। मयूर अर्थात मधुरभाषी। हमें सरस्वती का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए उनका वाहन मयूर बनना चाहिए। मीठा, नम्र, विनीत, सज्जनता, शिष्टता और आत्मीयतायुक्त संभाषण हर किसी से करना चाहिए। जीभ को कड़ुआ, धृष्ट, अशिष्ट बोलने की आदत कदापि न पड़ने दें। छोटों को भी तू नहीं, आप कहकर बोलें। कम-से-कम तुम तो कहें ही। हर किसी के सम्मान की रक्षा करें। उसे गौरवान्वित करें। सम्मान भरा व्यवहार करें, ताकि किसी को आत्महीनता की ग्रंथि का शिकार बनाने का पाप अपने सिर पर न चढ़े।

—परमपूज्य गुरुदेव

मितभाषण और मौन का महत्त्व

वाणी का जीवन एवं व्यवहार में महत्त्व सर्वविदित है, लेकिन सदा बोलते ही रहना या अधिक बोलना भी उचित नहीं होता। कब बोलना है, कब चुप रहना है; यह व्यावहारिक जीवन की सफलता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो जाता है। आध्यात्मिक रूप से इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है, जिसमें मितभाषण से लेकर मौन का सहारा लिया जाता है।

बिना सोचे कुछ भी बोलना किसी भी रूप में उचित नहीं रहता। ऐसे में बक-बक करने से नुकसान ही अधिक होता है, लाभ कुछ भी नहीं। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि वाणी हमारे शक्तिकोश को लपेटते हुए अभिव्यक्त होती है, जिसमें ऊर्जा का क्षय होता है। लगातार बोलना व्यक्ति को थका देता है। साथ ही इसके कारण भूल-चूक की संभावनाएँ भी बढ़ जाती हैं। बिना सोचे मुख से गलत बोल निकलने पर फिर पीछे पश्चात्ताप के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं बचता। इसकी भरपाई करने में फिर अनावश्यक मशक्कत करनी पड़ती है।

बिना सोचे-समझे अनावश्यक शब्दों का उपयोग व्यावहारिक जीवन को भी जटिल बना देता है, रिश्तों में दरार पड़ती है एवं आपस में गलतफहमियाँ पनपती हैं। बिगड़े बोल परिवार एवं यार-दोस्तों के बीच कलह-क्लेश का कारण बनते हैं, जिसे यदि सँभाला न गया तो हिंसा-प्रतिहिंसा, युद्ध एवं विकराल संघर्ष की परिस्थितियाँ तक खड़ी हो जाती हैं। महाभारत का युद्ध वाणी की छोटी-सी फिसलन का ही दुष्परिणाम था, जिसमें द्रौपदी के मुख से दुर्योधन के प्रति अपमानसूचक शब्द निकले थे।

फिर वाणी का हलकापन व्यक्तित्व के छोटेपन को ही उजागर करता है। दूसरों की निंदा, चुगली एवं पीठ पीछे बुराई आदि को करने के साथ व्यक्तित्व का क्षरण होता है, व्यक्ति की चारित्रिक दुर्बलता इंगित होती है और व्यक्तित्व अपनी गरिमापूर्ण स्थिति से गिर जाता है। ऐसे में सामाजिक जीवन में व्यक्ति की अप्रामाणिकता ही पुष्ट होती है, जिससे एक सफल-सार्थक जीवन दूर की कौड़ी साबित होता है।

इस पृष्ठभूमि में अपने आंतरिक एवं बाह्य उत्कर्ष की दृष्टि से मौन या मितभाषण का अभ्यास अभीष्ट हो जाता है। महात्मा गांधी अपनी आत्मकथा—'सत्य के मेरे प्रयोग' में लिखते हैं कि कम बोलने के मुझे दो लाभ मिले, एक—मैं जो भी बोला, सोच-समझकर बोला और दूसरा—कम बोलने से मेरा अज्ञान छिपा रहा, जो दूसरे के सामने नहीं प्रकट हो पाया। इस तरह मौन अज्ञानता को ढकने के लिए चादर का काम भी करता है। इसीलिए समझदार लोगों ने स्वर्णिम सूत्र दिया है कि तभी बोलें, जब आपके बोल मौन से बेहतर साबित हो रहे हों अन्यथा मौन रहने में ही भलाई मानी जाए।

इसलिए विज्ञजनों ने मितभाषण को महत्त्व दिया है और मित-मधुर एवं कल्याणी वाणी के रूप में बोलने का ऋषिप्रणीत सूत्र दिया। मितभाषण अनावश्यक गलतियों से भी बचाता है। इससे अनावश्यक ऊर्जा का क्षय रुकता है। व्यक्तित्व गंभीर एवं वजनदार बनता है। व्यवहार में चूकें कम होती हैं। सोचने-विचारने का अवसर मिलता है और तौलकर बोलना संभव होता है। ऐसे में रिश्ते भी बेहतर बनते हैं और एक सफल-सुखी जीवन का आधार तैयार होता है।

यदि आवश्यकता हो तो विशेष परिस्थितियों में मितभाषण से आगे बढ़कर मौन का सहारा लिया जा सकता है, विशेषकर तब, जब सामने आपकी बात को समझने वाला कोई न हो या किसी विपरीतबुद्धि, मूढ़मती से पाला पड़ गया हो। ऐसे में प्रतिपक्षी को समझाने का अधिक असर नहीं होता, बल्कि स्थिति वाद-विवाद एवं कलह तक आ पहुँचती है तथा उसके स्तर तक गिरने के लिए विवश होना पड़ता है। ऐसे में अपनी मन की शांति को बनाए रखने के लिए मौन ही सार्थक प्रत्युत्तर रहता है। ऐसे में 'किसी की उपेक्षा हो, पर अपमान नहीं' का भाव उचित रहता है, जिसका दृढ़ता से पालन कर ऐसी परिस्थितियों में उलझने से बचा जा सकता है। यह व्यावहारिक जीवन में शांति के साथ प्रकारांतर में आंतरिक विकास में भी सहायक सिद्ध होता है।

अत: विषम परिस्थितियों में कभी कटु वचन न बोलें, शाब्दिक हिंसा में प्रवृत्त न हों। कोई कैसा भी व्यवहार करे,

पर हम निंदा-चुगली एवं प्रपंच से सर्वथा दूर रहें। यह रचनात्मक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से भी एक स्वर्णिम सूत्र साबित होता है; क्योंकि ऐसा करने पर अपने मन की शांति एवं स्थिरता यथावत् बनी रहती है, जो कि सृजनात्मकता का उर्वर स्रोत एवं आधार बनती है।

जैसा कि सर्वविदित है कि हर उत्कृष्ट रचना मौन के गर्भ से ही प्रस्फुटित होती है। गंभीर शोध अनुसंधान इसी आधार पर संभव हो पाते हैं। आइन्स्टाइन से लेकर परमपूज्य गुरुदेव का सृजन संसार ऐसे ही मौन के संग सँजोए गए एकांतिक पलों के सुनियोजन का परिणाम था। हिमालय की यात्राओं का विशिष्ट प्रयोजन इसी एकांत में मौन वास, तप एवं सृजन साधना था। इन्हीं बहुमूल्य पलों का सदुपयोग करते हुए परमपूज्य गुरुदेव ने अल्प काल में ही आर्ष वाङ्मय की रचना का भागीरथी प्रयास संपन्न किया था, जिसकी प्रचुरता को देखकर कोई भी दाँतों तले उँगली दबाने के लिए विवश होता है।

मौन आध्यात्मिक दृष्टि से भी व्यक्ति को सशक्त करता है। इसी मौन में अंतर्वाणी का श्रवण संभव होता है, सूक्ष्मलोक के संदेशों के प्रति ग्राह्यता बढ़ती है तथा परमात्मचेतना से संवाद की स्थिति बनती है। इसीलिए मौन का सहारा लेते हुए नैष्ठिक साधक आध्यात्मिक चिंतन के साथ आत्मपरिष्कार की साधना में निमग्न होते हैं और आंतरिक विकास के पथ पर आगे बढ़ते हैं। इस तरह मौन और मितभाषण को साधते हुए सृजन साधक अंदर शांति के साथ बाहर सफलता के मार्ग पर गतिशील होते हैं। ❑

बाल्यकाल से ही युधिष्ठिर जो कुछ भी पढ़ते, उसके अनुरूप ही वे आचरण भी किया करते। आचार्य द्रोण ने एक दिन अपने विद्यार्थियों को 'सत्य बोलो, क्रोध न करो' का पाठ पढ़ाया। दूसरे ही दिन उन्होंने सभी विद्यार्थियों से पूछा—"तुम सभी ने कितना पढ़ा?" किसी ने कहा—"हमने दस पृष्ठ याद किए; किसी ने बीस बताए।

जब स्वयं युधिष्ठिर से पूछा गया तो वे डरते-डरते बोले—"मैंने तो केवल दो ही वाक्य याद किए हैं, सो भी अभी कच्चे हैं।" उनके इस उत्तर को सुनकर आचार्य को क्रोध आ गया। उन्होंने दो-तीन छड़ी खींचकर उनके लगा दीं, किंतु फिर भी वे चुपचाप खड़े रहे। युधिष्ठिर के इस व्यवहार पर आचार्य को बड़ा आश्चर्य हुआ व उन्होंने पुनः प्रश्न किया—"तुमने दो वाक्य कौन से याद किए हैं?"

युधिष्ठिर ने शांत भाव से उत्तर दिया—"क्रोध न करना, सत्य बोलना। आप जब छड़ी से मुझे मार रहे थे, उस समय मेरे मन में तो क्रोध आ रहा था, किंतु मैं बार-बार अपने मन को समझा रहा था कि क्रोध नहीं करना चाहिए।" इस प्रकार युधिष्ठिर ने जब अपने मन के भाव आचार्य के समक्ष सत्य-सत्य कह दिए और क्रोध भी नहीं किया तो आचार्य ने उनके इस प्रभावशाली आचरण से स्वयं प्रभावित हो उन्हें अपनी छाती से लगा लिया और आशीर्वाद देते हुए कहा—"वत्स! यथार्थ तो तुमने ही पढ़ा है।"

सत्संग से तरते हैं जीव और जंतु भी

प्रात:काल स्नान-ध्यान कर देवर्षि नारद अपने निवासस्थल ब्रह्मलोक से यात्रा करके सीधे देवलोक पहुँचे। दिन भर का समय देवलोक के भ्रमण एवं उपस्थित देवगणों से उनका कुशलक्षेम जान लेने की औपचारिकता में व्यतीत करने के उपरांत दिन के इस अंतिम प्रहर में वे ब्रह्मलोक लौट जाने के लिए तत्पर हुए ही थे कि उनका मन भूलोक गमन के लिए मचल उठा।

नभ की नीलिमा को ढकते, संध्या की लालिमा लिए छितराए बादलों में से झाँकते देवर्षि नारद, भूलोक की ओर अपनी कुतूहल भरी निगाहें दौड़ा रहे थे। भूलोक की यात्रा के लिए उत्साह में आए देवर्षि नारद को अब जाने से पूर्व उनकी इस होने वाली यात्रा की सूचना से अनभिज्ञ पिता ब्रह्मदेव एवं माता सरस्वती की चिंता सताने लगी। सामान्यतया वे भूलोक जाने से पूर्व यात्रा की आज्ञा उनसे अवश्य ही ले लिया करते थे, किंतु आकस्मिक उठे इस विचार को लेकर उनके मुखमंडल पर एक पल को जहाँ भ्रमण की सुखद कल्पना से आनंद झलक उठा तो वहीं दूसरे ही पल अपनी अनुपस्थिति से अभिभावकों को होने वाले कष्ट को याद कर असमंजस के भाव भी तैर गए।

देवर्षि को उलझन में फँसे देख भगवान विष्णु मुस्कराए व उनके इस द्वंद्व का समाधान करने के लिए अंत:स्फुरणा के माध्यम से कहने लगे—'नारद! चिंतित न हों। धर्म का प्रचार-प्रसार तथा लोक-कल्याण तुम्हारा जीवनोद्देश्य है; जिससे ब्रह्मदेव-देवी सरस्वती भलीभाँति भिज्ञ हैं। अत: तुम उनकी ओर से पूर्णत: आश्वस्त रहो एवं जीवन के इस नवीन प्रसंग का शुभारंभ करो।' अनन्य विष्णुभक्त नारद अनुगृहीत हो कह उठे—'नारायण-नारायण! जैसी हरि इच्छा।' अगले ही क्षण अपनी वीणा सँभाल वे मायावी बादलों पर सवार हो गए एवं तीव्र गति से भूलोक की ओर प्रस्थान करने लगे।

प्रभु का संकेत पकड़ते-समझते सर्वप्रथम वे महर्षि कश्यप के आश्रम में जा पहुँचे। दिव्य आभा में दमकता महर्षि कश्यप का आश्रम धरती पर स्वर्ग के समान सदृश्य हो रहा था। आश्रम के विशाल परिसर को कुछ समय अपलक निहारते नारद आश्रम के मुख्य द्वार से आश्रम के भीतर प्रविष्ट हुए। सीधी कतारों में प्रतिष्ठित छोटे-बड़े आकारों में बनी शिक्षणशालाओं से होते वे सीधे महर्षि की कुटिया के निकट जा पहुँचे।

देवर्षि को अपने समक्ष पाकर महर्षि के वरिष्ठ शिष्यों ने चरणवंदन कर उनका स्वागत किया। अपना स्नेहाशीष प्रदान कर देवर्षि नारद शिष्यों से कहने लगे— ''विद्यार्थियो! मैं मुनिवर के दर्शनों हेतु सीधे देवलोक से चला आ रहा हूँ।'' शिष्य गणों में से महर्षि कश्यप के प्रधान सेवक देवर्षि के सम्मुख आए व कहने लगे— ''भगवन्! क्षमा कीजिए। गुरुदेव अभी संध्यावंदन में लीन हैं। यदि आपकी अनुमति हो तो क्या हम आपके भोजन-विश्राम की व्यवस्था कर थोड़ी प्रतीक्षा के उपरांत गुरुदेव से भेंट की व्यवस्था बनाएँ?'' नारद आशीर्वाद देने की मुद्रा में अपनी सहर्ष अनुमति प्रदान करते हुए कहने लगे—''अवश्य! महर्षि के संध्या के क्रम के संपन्न हो जाने तक थोड़ा विश्राम कर लेना भी उचित रहेगा।''

देवर्षि नारद के यथोचित सत्कार के थोड़े समय पश्चात महर्षि अपनी कुटिया से बाहर आए व शिष्यों से देवर्षि नारद को आदरसहित कक्ष में लाने का निर्देश दिया। देवर्षि, महर्षि के सेवकों के संग अतिथिशाला से निकलकर महर्षि के कक्ष में प्रविष्ट हुए एवं महर्षि को अभिवादनस्वरूप प्रणाम करते हुए कहने लगे—''महात्मन्! आप धन्य हैं। निर्गुण ब्रह्म तत्त्व को अपने प्रचंड तप से साकार-सगुण स्वरूप में सर्वोपलब्ध कराने वाले हे महर्षि! आपको नारद का शत-शत नमन। आपके इस पुण्य-पुरुषार्थ के बिना ईश्वरप्राप्ति के लिए भक्तिमार्ग का शुभारंभ असंभव ही था। आपके इस उपकार के लिए समस्त मानव जाति सदैव आपकी ऋणी रहेगी।''

देवर्षि के कृतज्ञ भावपूर्ण उद्गार सुन महर्षि ने आँखें बंद कर लीं व गहरा श्वास छोड़ते हुए कहने लगे—''देवर्षि! भगवद्सत्ता के उद्घाटन में निमित्त की भूमिका निश्चित ही सौभाग्यपूर्ण घटना थी।'' अध्यात्म तत्त्व की गंभीर परिचर्चा में ध्यानस्थ मुनिश्रेष्ठ एवं महर्षि को समय का पता न चला।

संध्या के इस अंतिम भाग में देवर्षि व्यग्र होते महर्षि से जाने की आज्ञा माँगने लगे। महर्षि अपना आशीष प्रदान करते हुए कहने लगे—"विधान की जय हो।"

नारद, महर्षि कश्यप के आश्रम से होते महर्षि शौनक के आश्रम को जा रहे थे। रात्रि हो चली थी, किंतु नारद को अभी तक इसकी आहट सुनाई न दी थी। वे तो बस, धरती के संस्पर्श के अनुभव का आनंद लेते महर्षि शौनक के आश्रम की ओर निरंतर बढ़ते चले जा रहे थे। लंबी दूरी की इस यात्रा में प्रभु का नाम-गुणगान करते भगवद्भक्ति की धुन में रमे नारद राह में उड़ रहे पतंगे के मस्तक पर टकराते ही यकायक चौंके। पंखों में संतुलन बनाकर उड़ते टिमटिमाते जुगनू को वृक्ष-लताओं की ओर से जाते देख नारद की दृष्टि आकाश की ओर जाकर थम गई।

आकाश में छाए गुप्प अँधियारे में बिखरे तारों को देख वे वहीं ठिठके। स्वयं से संवाद करते हुए कहने लगे—"नारद! यह क्या? रात्रि हो गई और महर्षि शौनक का आश्रम तो अभी भी नहीं दिख रहा है। अनवरत यात्रा करते महर्षि कश्यप का आश्रम भी काफी पीछे छूट गया है।" नारद प्रभु को याद करते आगे कहने लगे—"नारायण-नारायण! अब क्या योजना है नारद?" स्वयं ही उत्तर देते वे कहने लगे—"नारायण-नारायण! जैसी प्रभु की इच्छा। प्रतीत होता है कि भोर होने तक की प्रतीक्षा करनी होगी।" वन में मार्ग के निकट एक वटवृक्ष के सहारे बैठ वे रात भर अपनी वीणा बजाते रहे।

सुबह हुई। हलका-सा प्रकाश भी होने लगा। उन्होंने देखा, सामने कुछ दूरी पर बैठा एक श्वान अत्यंत तन्मयता के साथ वीणा की ध्वनि और नारायण जप सुन रहा है। आश्चर्यचकित नारद सोचने लगे—"पशु भी वीणा के संगीत की मधुरता और ईश-वंदना की शीतलता को अनुभव कर रहा है।" नारद स्वभावगत वीणा के तारों को झंकृत करते हुए नारायण-नारायण का जप भी करते चले जा रहे थे। जब वे काफी आगे निकल गए, तो अनुगमन कर रहे उसी श्वान को देखकर हतप्रभ रह गए। उन्होंने पाया कि श्वान के चेहरे पर वही तन्मयता, वही गहनता है, जो वटवृक्ष के नीचे थी। एक बार को उनका मन हुआ कि उस श्वान को भयभीत करके भगा दिया जाए, किंतु दूसरे ही क्षण आत्मा ने उत्तर दिया कि यह गलत होगा। श्वान वीणा के संगीत और नारायण जप पर मुग्ध है, इसलिए उसे साथ आने से न रोका जाए।

यात्रा करते नारद शांतायान वन में महर्षि शौनक के आश्रम पहुँचे। वह श्वान भी साथ था। आम्रवृक्ष के नीचे बैठकर शौनक कुछ लिख रहे थे। नारद उनके सामने पहुँचे और नारायण-नारायण कहकर अभिवादन किया। पीछे से भी नारायण-नारायण की आवाज आई। नारद अचंभित थे कि उनके अभिवादन को किसी ने दोहराया। उनके पीछे खड़े श्वान ने पुनः नारायण-नारायण का उच्चारण किया। महर्षि शौनक अपने आसन से खड़े हो गए एवं नारद को संबोधित करते कहने लगे—"अच्छी संगत में पशु भी सात्त्विक गुणों का विकास कर सकते हैं। यह श्वान ईशभक्ति की सिद्धि को प्राप्त कर चुका है। इसने अल्पकाल में ही ईश्वर की निकटता को पा लिया। यही कारण है कि यह अपनी स्वाभाविक वाणी का परित्याग कर भक्तों की वाणी बोल रहा है।" श्वान सामने आया और महर्षि शौनक और नारद के चरणों के निकट आकर बोला—"ऋषिवर! संसार के महान मनीषियों से मैंने नारायण शब्द को सुना और उसे अपनी आत्मा से जपना आरंभ किया। मेरे मन से विद्वेष, हिंसक प्रवृत्ति और काम-वासना उसी समय दूर होती चली गई। आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे मुक्ति का आशीष दें।"

भूत, वर्तमान एवं भविष्य—तीनों कालों के ज्ञाता, सत्यभाषी, कठोर तपस्या के कारण लोकविख्यात देवर्षि नारद बोले—"प्रिय! आपने मानव जाति से भी महान कार्य किया है। आपको मैं आदरणीय मानता हूँ। अपने तप और साधना के बल पर एकत्र शक्ति से मैं आपको यह आशीष देता हूँ कि आप सशरीर स्वर्ग की यात्रा करेंगे और वहाँ पहुँचकर देवस्वरूप हो जाएँगे।" इस समूचे घटनाक्रम के द्रष्टा महर्षि शौनक अपने शिष्यों को सत्संग के माहात्म्य को प्रकाशित करते कहने लगे—"शिष्यो! सदा उत्तम ज्ञान, उत्तम चरित्र और उत्तम व्यवहार के व्यक्तियों के पास ही उठना-बैठना चाहिए। इससे जीवन में समृद्धि, शांति और प्रसन्नता आती है। सत्संग किसी भी प्राणी को सन्मार्ग दिखा सकता है। वह मनुष्य हो या पशु-पक्षी, सत्संग के माध्यम से परम पद प्राप्त करता है।"

कालांतर में महाभारतकाल में युधिष्ठिर के साथ स्वर्ग-आरोहण के लिए जाने वाला श्वान यही था; जिसने देवर्षि नारद की कृपा से सशरीर स्वर्ग की यात्रा संपन्न की थी। ❑

पर्व विशेष

रक्षाबंधन का पवित्र प्रतीक—रक्षासूत्र

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन रक्षाबंधन का पर्व मनाया जाता है। इस दिन बहनें भाइयों की कलाई पर रक्षासूत्र बाँधती हैं। यह पर्व नारी के प्रति पवित्र भावना की प्रेरणा तो देता ही है साथ ही उसे शक्ति के रूप में स्वीकार करने की शिक्षा भी देता है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं में इसका प्रमाण मिलता है। इंद्र को देवासुर संग्राम में विजय तभी मिली, जब देवी शचि ने पवित्र भाव से उन्हें रक्षासूत्र बाँधा। अर्जुन, शिवाजी, छत्रसाल आदि महापुरुषों की सफलता के पीछे भी रक्षासूत्र के रूप में उनका नारी के प्रति पवित्र दृष्टिकोण ही महत्त्व रखता है।

रक्षासूत्र बाँधने में भारतीय ऋषि परंपराओं का भी अपना विशेष महत्त्व है। इस दिन आचार्य-ब्राह्मण अपने यजमानों को रक्षासूत्र बाँधते हैं। आचार्य-ब्राह्मण का यजमानों को रक्षासूत्र बाँधने का भाव यह है कि यजमान समृद्ध हों और वे अपने पवित्र कर्त्तव्यपालन और मर्यादाओं का ध्यान रखें। इसी पवित्र भाव से बहन भी भाई की कलाई पर रक्षासूत्र बाँधती है। इस दिन व्रत (उपवास) का विधान भी आता है।

जो परिवार व्रत रखते हैं, उन्हें चाहिए कि इस दिन प्रात: सविधि स्नान करके देवता, पितर और ऋषियों का तर्पण करें। दोपहर के बाद ऊनी, सूती या रेशमी पीत वस्त्र लेकर उसमें सरसों, सुवर्ण, केसर, चंदन, अक्षत और दूर्वा रखकर बाँध लें, फिर गोबर से लिपे स्थान पर कलश-स्थापन कर उस पर रक्षासूत्र रखकर उसका यथाविधि पूजन करें। उसके बाद विद्वान ब्राह्मण से रक्षासूत्र को दाहिने हाथ में बँधवा लें। रक्षासूत्र बाँधते समय ब्राह्मण को निम्नलिखित मंत्र पढ़ना चाहिए—

येन बद्धो बलीराजा, दानवेन्द्रो महाबल:।
तेन त्वां प्रति बध्नामि, रक्षे मा चल मा चल॥

इस व्रत के संदर्भ में एक कथा प्रचलित है—प्राचीनकाल में एक बार बारह वर्षों तक देवासुर संग्राम होता रहा। जिसमें देवताओं का पराभव हुआ और असुरों ने स्वर्ग पर आधिपत्य कर लिया। दु:खी, पराजित और चिंतित इंद्र देवगुरु बृहस्पति के पास गए और कहने लगे कि इस समय न तो मैं यहाँ सुरक्षित हूँ और न ही यहाँ से कहीं निकल ही सकता हूँ। ऐसी दशा में मेरा युद्ध करना ही अनिवार्य है; जबकि अब तक के युद्ध में हमारा पराभव ही हुआ है। इस वार्त्तालाप को इंद्राणी भी सुन रही थीं। उन्होंने कहा—"कल श्रावण शुक्ल पूर्णिमा है। मैं विधानपूर्वक रक्षासूत्र तैयार करूँगी, उसे आप स्वस्तिवाचन करके ब्राह्मणों से बँधवा लीजिएगा। इससे आप अवश्य विजयी होंगे।" दूसरे दिन इंद्र ने रक्षा विधान और स्वस्तिवाचनपूर्वक रक्षाबंधन कराया। जिसके प्रभाव से उनकी विजय हुई। तब से यह दिवस एक पर्व के रूप में मनाया जाने लगा।

रक्षाबंधन का पवित्र पर्व भद्रारहित अपराह्न व्यापिनी तिथि में मनाया जाता है। यही शास्त्रों का मत है कि यदि पूर्णिमा दो दिन हो तो प्रथम दिन को महत्त्व दिया जाना चाहिए। यदि उस दिन भद्रा हो तो उसका त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि ज्योतिष एवं धर्मशास्त्रों का मत है कि इस मुहूर्त में रक्षासूत्र (राखी) बाँधने से राजा का अनिष्ट होता है—

भद्राया द्वे न कर्त्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा।
श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी॥

यही पर्व श्रावणी पर्व, श्रावणी उपाकर्म पर्व के रूप में भी मनाया जाता है। श्रावणी विशेषकर देवपर्व है। वेदपारायण के शुभारंभ को उपाकर्म कहते हैं। इस दिन यज्ञोपवीत के पूजन का भी विधान है। ऋषि पूजन तथा पुराने यज्ञोपवीत को उतारकर नया यज्ञोपवीत धारण करना पर्व का विशेष कृत्य है। प्राचीन समय में यह कर्म गुरु अपने शिष्यों के साथ संपन्न किया करते थे। इस उपाकर्म में सर्वप्रथम तीर्थ की प्रार्थना के बाद वर्ष भर के जाने-अनजाने में हुए पापों के निराकरण के लिए प्रायश्चित रूप में हेमाद्रिस्नान संकल्प करके दशविध स्नान करने का विधान है। इसके अनंतर ऋषिपूजन, सूर्योपासना, यज्ञोपवीत पूजन तथा नवीन यज्ञोपवीत धारण करने का विधान है।

रक्षाबंधन एवं सभी भारतीय त्योहार और रिवाजों के पीछे कुछ गहरे वैज्ञानिक तथ्य छिपे हुए हैं, जो मानव कल्याण से जुड़े हैं। रक्षाबंधन के दिन बहनें अपने भाइयों

की दाहिनी कलाई पर रक्षासूत्र बाँधती हैं। सांख्य दर्शन की दृष्टि से यह त्योहार परिवार के सदस्यों के बीच प्यार, सामंजस्य, लगाव और प्रतिबद्धता पैदा करने के लिए एवं उनकी आंतरिक चेतना को नियोजित करने के लिए सर्वाधिक व्यावहारिक तरीका प्रदान करता है। रक्षाबंधन परिवार के सदस्यों के बीच प्यार, लगाव और जुड़ाव का त्योहार है। यह वह दिन भी है, जब परिवार के पुरुष अपने परिवार के कल्याण के लिए संकल्प भी लेते हैं।

वास्तु शास्त्र की दृष्टि से देखें तो प्यार, स्नेह, देख-भाल और परिवार के बीच एकदूसरे की सुरक्षा का भाव महावास्तु के 16 वास्तु क्षेत्र में से दो क्षेत्रों दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व से गहरे तौर पर जुड़ा है; क्योंकि रिश्तों और पारिवारिक जुड़ाव का वास्तु क्षेत्र दक्षिण-पश्चिम है। यह परिवार के सदस्यों के बीच लगाव, प्यार, जुड़ाव और सामंजस्य को नियंत्रित करता है।

यह क्षेत्र हमारे परिवार के कल्याण के प्रति हमारी प्रतिबद्धता को भी नियंत्रित करता है। किसी भी घर में दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र परिवार के बीच न केवल स्वस्थ रिश्तों को सुनिश्चित करता है, बल्कि पूर्वजों से आशीर्वाद दिलाने में भी मदद करता है और यह परिवार के सुरक्षा बल के तौर पर काम करता है। जब घर का यह क्षेत्र संतुलित रहता है तो हमारे भाई और बहन हमेशा हर तरह से हमारी मदद के लिए तैयार रहते हैं। एकदूसरे के हितों की रक्षा और जिंदगी की कठिनाइयों से समस्त परिवार की सुरक्षा करने को यहाँ रहने वाले लोग प्रतीक रूप से तैयार रहते हैं।

प्राचीनकाल से ही मानवीय निवास के बाहरी परिकर में मौजूद विभिन्न प्रकार के खतरों और भय से खुद को बचाने के लिए आग का प्रयोग किया जाता रहा है। मानव मन और सभ्यता के विकास के साथ ही हर तरह की बाधाओं, भय और समस्याओं से समाधान करने के लिए इसकी शक्ति को स्वीकार भी किया जाने लगा। महावास्तु में दक्षिण-पूर्व को अग्नि तत्त्व की दिशा माना जाता है; क्योंकि इसमें अग्नि के गुण मौजूद हैं; इसलिए यह हमारे जीवन में सुरक्षा लाता है।

आधुनिक समय में नकद धन की उपलब्धि इसी वास्तु क्षेत्र से संचालित होती है। आज के समय में आर्थिक संपदा ही सुरक्षा, शक्ति और आत्मविश्वास का प्रतीक बन गई है। रक्षाबंधन के पवित्र मौके पर भाई द्वारा अपनी बहन को धन प्रदान करने की परंपरा के पीछे यही मुख्य वजह है। जो भी हो, रक्षाबंधन भ्रातृत्व प्रेम का अनोखा पर्व है। इसके लिए अनेक मान्यताएँ प्रचलित हैं और हर मान्यता में एक गहरा प्रेम ही दिखाई देता है। रक्षाबंधन में बंधन का आधार रक्षासूत्र है, जिसकी पवित्रता सदा अक्षुण्ण रहने वाली है। ❑

एक बार ब्रह्म-सरोवर भगवान विष्णु से भगवती गंगा की शिकायत करते हुए कहने लगे—"भगवन्! आप भगवती गंगा की इतनी सराहना किया करते हैं, हम भी तो लोगों को शीतलता और सद्गति प्रदान करते हैं, परंतु वह पुण्य हमें क्यों नहीं मिलता?"

भगवान विष्णु कुछ गंभीर हुए व ब्रह्म-सरोवर की समस्या का समाधान करते हुए उनसे कहने लगे—"वत्स! भगवती गंगा स्थान-स्थान, घर-घर जाकर लोगों की प्यास बुझातीं और सद्गति प्रदान करती हैं; जबकि आप केवल उन्हें लाभ देते हैं, जो स्वयं आपके पास आते हैं।"

ब्रह्म-सरोवर ने अनुभव किया कि भगवती गंगा सचमुच महान हैं। उन्हें अपने भीतर कभी-कभी इस प्रकार के विकार के पैदा होने का कारण भी ज्ञात हो गया।

आहार-विहार का अध्ययन है आयुर्वेद

आयुर्वेद (आयु + वेद = आयुर्वेद) विश्व की प्राचीनतम चिकित्सा प्रणालियों में से एक है। यह अथर्ववेद का उपवेद भी है। यह विज्ञान, कला और दर्शन का मिश्रण है। 'आयुर्वेद' नाम का अर्थ है—'जीवन का ज्ञान' और यही संक्षेप में आयुर्वेद का सार है।

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥

अर्थात हितायु (जीवन के अनुकूल), अहितायु (जीवन के प्रतिकूल) सुख आयु (स्वच्छ जीवन) एवं दुःख आयु (रोग अवस्था)—इनका वर्णन जहाँ हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेद और आयुर्विज्ञान दोनों ही चिकित्सा शास्त्र हैं, परंतु व्यवहार में चिकित्सा शास्त्र के प्राचीन भारतीय ढंग को आयुर्वेद कहते हैं और एलोपैथिक प्रणाली (जनसामान्य की भाषा में आधुनिक चिकित्सा) को आयुर्विज्ञान का नाम दिया जाता है।

आयुर्वेद की परिभाषा है—आयुर्वेद विश्व में विद्यमान वह साहित्य है, जिसके अध्ययन के पश्चात हम अपनी ही जीवनशैली का विश्लेषण कर सकते हैं। जो शास्त्र या विज्ञान, आयु या जीवन का ज्ञान कराता है, उसे आयुर्वेद कहते हैं। स्वस्थ व्यक्ति एवं आतुर (रोगी) के लिए उत्तम मार्ग बताने वाले विज्ञान को आयुर्वेद कहते हैं। जिस शास्त्र में आयु शाखा (उम्र का विभाजन), आयु विद्या, आयु सूत्र, आयु ज्ञान, आयु लक्षण (प्राण होने के चिह्न), आयु तंत्र (शारीरिक रचना, शारीरिक क्रियाएँ)—इन संपूर्ण विषयों की जानकारी मिलती है, वह आयुर्वेद है।

आयुर्वेद का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार संसार की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद है। विभिन्न विद्वानों ने इसका रचनाकाल ईसा के 3000 से 5000 वर्ष पूर्व तक माना है। इस संहिता में भी आयुर्वेद के अतिमहत्त्वपूर्ण सिद्धांत यत्र-तत्र विकीर्ण हैं। इससे आयुर्वेद की प्राचीनता सिद्ध होती है। अतः हम कह सकते हैं कि आयुर्वेद का रचनाकाल ईसा पूर्व 3000 से 5000 वर्ष पूर्व का है।

आयुर्वेद चिकित्सा के अनगिनत लाभ हैं। आयुर्वेद चिकित्सा विधि सर्वांगीण है। आयुर्वेद चिकित्सा के उपरांत व्यक्ति की शारीरिक तथा मानसिक, दोनों ही स्थितियों में सुधार होता है। व्यावहारिक रूप से आयुर्वेदिक औषधियों के कोई दुष्प्रभाव देखने को नहीं मिलते हैं। आयुर्वेदिक औषधियों के अधिकांश घटक—जड़ी-बूटियों, पेड़-पौधों, फूलों एवं फलों आदि से प्राप्त किए जाते हैं। अतः यह चिकित्सा प्रकृति के अति निकट है। अनेकों जीर्ण रोगों के लिए आयुर्वेद विशेष रूप से प्रभावी है।

आयुर्वेद न केवल रोगों की चिकित्सा करता है, बल्कि रोगों को रोकता भी है। आयुर्वेद भोजन तथा जीवनशैली में सरल परिवर्तनों के द्वारा रोगों को दूर रखने के उपाय सुझाता है। आयुर्वेदिक औषधियाँ स्वस्थ लोगों के लिए भी उपयोगी हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सा अपेक्षाकृत सस्ती भी है; क्योंकि आयुर्वेद चिकित्सा में सरलता से उपलब्ध जड़ी-बूटियाँ काम में लाई जाती हैं।

आयुर्वेद संबंधी शोध को हमें प्रश्रय देना चाहिए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार का ध्यान आयुर्वेद सिद्धांत एवं चिकित्सा संबंधी शोध की ओर आकर्षित हुआ। फलस्वरूप इस दिशा में कुछ महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं और कुछ शोध परिषदों एवं संस्थानों की स्थापना की गई है, जिनमें से प्रमुख हैं—भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं होम्योपैथी की केंद्रीय अनुसंधान परिषद्— (सेंट्रल काउंसिल फॉर रिसर्च इन इंडियन मेडिसिन एंड होम्योपैथी) नामक इस स्वायत्तशासी केंद्रीय अनुसंधान परिषद् की स्थापना का बिल भारत सरकार ने 22 मई, 1969 को लोकसभा में पारित किया था।

इसका उद्देश्य आयुर्वेद चिकित्सा के सैद्धांतिक एवं प्रायोगिक पहलुओं के विभिन्न पक्षों पर अनुसंधान के सूत्रपात को निदेशित, प्रोन्नत, संवर्धित तथा विकसित करना है। इस संस्था के प्रधान कार्य इस प्रकार हैं—भारतीय चिकित्सा प्रणाली, होम्योपैथी तथा रोग के विभिन्न सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पहलुओं में वैज्ञानिक अनुसंधान का सूत्रपात, संवर्धन एवं सामंजस्य स्थापित करना तथा केंद्रीय परिषद् एवं आयुर्वेदीय वाङ्मय के उत्कर्ष पत्रों आदि का मुद्रण, प्रकाशन एवं प्रदर्शन करना।

आयुर्वेद स्वास्थ्य के प्रति सकारात्मक एवं प्राकृतिक दृष्टिकोण अपनाता है। प्रतिदिन के आहार एवं साधारण बीमारियों में आयुर्वेदिक नुस्खे लाभप्रद होते हैं और इन प्राकृतिक तत्त्वों का कुप्रभाव भी नहीं होता है। उदाहरण के तौर पर मौसम बदलने पर खाँसी-जुकाम, एलर्जी, इन्फेक्शन आदि में एक कप पानी में गुड़ का एक टुकड़ा व काली मिर्च मिलाकर उबाल लें। इसके गरम-गरम, छोटे-छोटे घूँट भरने से आराम मिलता है। एक चम्मच अदरक के रस में आँवले का रस, एक छोटा चम्मच शहद थोड़े पानी में मिलाकर पिएँ। बढ़ती एसिडिटी (छाती पर जलन) होने पर प्रतिदिन एक लौंग चबाएँ। सौंफ का पानी पिएँ।

तुलसी की पत्ती धोकर चबाएँ—ये सब करने से लाभ मिलता है। खून की कमी होने पर फालसे का सेवन करें। जीरा, पत्तेदार सब्जियाँ, साबुत अनाज, संतरे का रस, दूध व मुनक्के आदि के सेवन से रक्त में रक्त कोशिकाओं की संख्या बढ़ती है और खून की कमी भी पूरी होती है।

आयुर्वेद के साथ योग करने का भी अपना महत्त्व होता है। जैसे, अनुलोम-विलोम, प्राणायाम पूरे शरीर और मन के शुद्धीकरण के लिए सबसे अच्छा व सरल उपाय है; इससे तंत्रिका तंत्र मजबूत होता है। यह तनाव से पैदा होने वाले फ्री रेडिकल्स का मुकाबला करता है, जिससे हम तरोताजा अनुभव करते हैं। आयुर्वेद में प्राथमिक चिकित्सा के भी बहुत से उपाय हैं, जैसे बेहोश होने पर, मुँह में छाले होने पर, घाव या चोट लगने पर, काँटा चुभने पर, दरद होने पर हमें क्या करना चाहिए—इस हेतु अनेकों कारगर उपायों का वर्णन इसमें है।

सर्वप्रथम हमें अपने शरीर की भाषा को समझना चाहिए कि उसे कब क्या चाहिए। बीमार होने पर भोजन से प्राप्त चीजों को लेने का सही तरीका व मात्रा का ज्ञान हमें होना चाहिए। ठीक न होने पर चिकित्सक के पास अवश्य जाएँ। हमारा प्रतिदिन का आहार शुद्ध व सुपाच्य हो। सोने-जागने का समय निश्चित हो। अगर हम उपरोक्त बातों पर ध्यान देते हुए जीवनयापन करेंगे तो आयुर्वेद प्रभावशाली होता है। आयुर्वेद आहार एवं विहार, दोनों के हेतु समुचित परामर्श देता है। इसलिए आयुर्वेद को आहार-विहार का अध्ययन भी कहा जाता है। ❑

गुरुकुल में अध्ययनरत विद्यार्थियों में संपन्न घरों से आए बालकों ने गुरुकुल संचालक आत्रेय से पूछा—"आचार्य! जो अपने घरों से अच्छा भोजन और वस्त्र मँगा सकते हैं, वे उनका उपयोग क्यों न करें? वे भी क्यों दूसरे निर्धनों की तरह असुविधाएँ भुगतें?" आत्रेय निर्दोष विद्यार्थियों को स्नेहपूर्वक समझाते हुए कहने लगे—"विद्यार्थियो! उत्तम मनुष्य जिस समुदाय में रहते हैं, उसी की तरह जीवनयापन करते हैं। यह समता ही अपने और दूसरों के लिए सौजन्य उत्पन्न करती है। संपन्नता का प्रदर्शन ईर्ष्या और अहंकार उत्पन्न करता है, इससे विग्रह खड़े होते हैं और सहयोग का आधार टूट जाता है। विषमता ने ही समाज में अनेक विग्रह खड़े किए हैं और अपराधों-अनाचारों को जन्म दिया है। यहाँ समानता का जीवन जीने की दिशा दी जाती है। समाज के अन्य लोगों की तरह ही जीना सिखाया जाता है। धनी अपना धन निर्धनों को ऊँचा उठाने में लगाएँ, न कि निजी सुविधा संवर्द्धन में।" विद्यार्थियों ने समता के दूरगामी सत्परिणाम समझे और संपन्नों के मन में जो अधिक उपयोग का भाव उठा था, वह भी समाप्त हो गया।

दान से देवत्व की ओर

प्राय: सभी धर्मों में दान की महत्ता बताई गई है। भारतीय संस्कृति व सनातन धर्म में तो दान को मनुष्य का परम कर्त्तव्य माना गया है। आखिर दान क्या है और दान की इतनी महत्ता क्यों है ? दान का शाब्दिक अर्थ है—'देने की क्रिया।' अत: दान शब्द के मूल में है 'देना'। अब प्रश्न उठता है क्या देना ? किसे देना ? क्यों देना ? कैसे देना ? यहाँ 'देना' से तात्पर्य है हमारे पास भौतिक या अभौतिक जो भी संसाधन हैं उनका व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्वकल्याण में सुनियोजन व अर्पण। धन-संपदा, अन्न, जल, वस्त्र और औषधि आदि से हम दूसरों की सेवा-सहायता कर सकते हैं। हम भौतिक संसाधनों का दान कर किसी जरूरतमंद की सेवा, सहायता कर सकते हैं; उसे खुशियाँ दे सकते हैं। उसे प्रसन्नता प्रदान कर सकते हैं।

जिस व्यक्ति को जिस समय, जिस वस्तु की आवश्यकता हो, उसे उस समय उसी वस्तु का दान कर, अर्पण कर हम उसकी तत्काल सेवा-सहायता कर सकते हैं। जैसे कोई भूखा हो तो उसे भोजनादि से तृप्त कर सकते हैं। उसे खाद्य पदार्थ अर्पित कर सकते हैं। प्यासे को पानी पिलाकर उसे तृप्त कर सकते हैं। वस्त्रहीन को वस्त्र दान देकर उसे खुशियाँ दे सकते हैं। रोगी को औषधि व अन्य सेवाएँ देकर रोगमुक्त होने में उसकी मदद कर सकते हैं। किसी दुर्घटनाग्रस्त या रोगग्रस्त व्यक्ति को रक्तदान देकर उसे नया जीवन दे सकते हैं। किसी गरीब कन्या की शादी में धन अर्पित कर हम उसकी मदद कर सकते हैं। आश्रमों, धर्मशालाओं, आरण्यकों आदि को धन अर्पित कर उनके सफल संचालन में हम सहयोग कर सकते हैं। यज्ञ, अनुष्ठान आदि धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति में अपना धन अर्पित कर हम पुण्य के भागी बन सकते हैं।

भौतिक संसाधनों के अतिरिक्त विधाता ने हमें कुछ ऐसी अनमोल चीजें दी हैं, ऐसे संसाधन दिए हैं, जिनके द्वारा भी हम दूसरों की सेवा-सहायता कर सकते हैं। प्रतिभा, विद्या, मेधा, ईमानदारी, करुणा, प्रेम, संवेदना, स्नेह, श्रम, समय आदि ऐसे अभौतिक संसाधन हैं, जिनसे हम लोगों का बहुत बड़ा उपकार कर सकते हैं। हम अपनी प्रतिभा से, मेधा से पूरी मानवता का कल्याण कर सकते हैं। चिकित्सक, अभियंता, किसान, व्यापारी, उद्योगपति, वैज्ञानिक, अध्यापक, कलाकार एवं हर व्यक्ति में कुछ विशिष्ट व अलग-अलग प्रतिभाएँ हैं, जिन्हें अर्पित कर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व का उपकार किया जा सकना संभव है।

एक चिकित्सक अपनी प्रतिभा का दान कर किसी असहाय व गरीब व्यक्ति को नया जीवन दे सकता है। समाज में, संसार में ऐसे अगणित लोग हैं, जो पैसे के अभाव में अच्छी चिकित्सा-सेवा से प्राय: वंचित होते हैं और काल-कवलित भी। एक चिकित्सक अपनी चिकित्सकीय प्रतिभा को अर्पित कर स्वस्थ व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व के निर्माण में अपना अमूल्य योगदान दे सकता है।

आज जबकि स्वास्थ्य केंद्र, औषधालय व चिकित्सालय आदि सेवा की जगह अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाने के केंद्र के रूप में विकसित होने लगे हैं, तब वास्तव में सेवा, संवेदना, करुणा, प्रेम आदि दिव्य गुणों से ओत-प्रोत चिकित्सकों की समाज व राष्ट्र को बड़ी आवश्यकता है, जो प्रेम, करुणा व संवेदना के साथ रोगियों को अपनी चिकित्सकीय सेवाएँ देकर उन्हें नई जिंदगी व अपार खुशियाँ दे सकें।

आज समाज व राष्ट्र को ऐसे ईमानदार अभियंताओं की आवश्यकता है, जो राष्ट्रहित में अपनी प्रतिभा अर्पित कर सकें। आएदिन टूटी-फूटी सड़कें, इमारतें, पुल आदि देखने को मिलते हैं, ऐसा क्यों है ? ऐसा इसलिए है; क्योंकि प्राय: हमारी प्रतिभा भी बिकाऊ होने लगी है। फलस्वरूप हम कामचलाऊ काम करने की प्रवृत्ति के शिकार होने लगे हैं। प्रतिभा तो एक ईश्वरीय वरदान है, जिसका सुनियोजन व अर्पण राष्ट्रनिर्माण में होना ही चाहिए। वैज्ञानिक भी प्रतिभा के बल पर ही पूरी दुनिया को चमत्कृत करते आए हैं।

राष्ट्रनिर्माण में व्यापारी व उद्योगपति वर्ग का भी बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। उद्योगपति व्यापार व उद्योग के संचालन में सेवा दे रहे लोगों की सेवा-सहायता के साथ-साथ, समाज व राष्ट्रनिर्माण की अन्य गतिविधियों; जैसे आपदा निवारण, पर्यावरण संरक्षण आदि में सहयोग कर

समाज व राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा कर सकते हैं। उसी प्रकार एक अध्यापक ईमानदारी व निष्ठापूर्वक अपनी विद्या व प्रतिभा के दान से विद्यार्थियों के जीवन निर्माण में अपना अमूल्य योगदान दे सकता है।

प्रतिभा जीविकोपार्जन का साधन मात्र नहीं है। अपनी प्रतिभा को जीविकोपार्जन का साधन मात्र बनाए रखना तो प्रतिभा का घोर अपमान व निरादर करना है। प्रतिभा मात्र व्यावसायिक कार्य की खानापूर्ति तक सीमित रहने वाली वस्तु नहीं है। अकेले विद्या का उदाहरण लें तो विद्या एक ऐसा धन है, जिसे जितना बाँटा जाए, वह उतना ही कम है। व्यावसायिक कार्य के अलावा समाज में शिक्षा व विद्या से वंचित लोगों की नि:शुल्क सेवा-सहायता, शिक्षण आदि से ही ऐसी प्रतिभा का असली सम्मान होता है। आज के व्यावसायिक युग में जब शैक्षणिक संस्थान शिक्षा व संस्कार के केंद्र के रूप में नहीं, बल्कि व्यापारिक प्रतिष्ठान के रूप में अधिक विकसित होने लगे हैं, तब तो ऐसे प्राध्यापकों व शैक्षणिक संस्थानों की देश में और भी अधिक आवश्यकता है, जो गरीब विद्यार्थियों को नि:शुल्क शिक्षा देकर राष्ट्र को सभ्य, सुशील, सुसंस्कृत नागरिकों की लहलहाती पौध अर्पित कर सकें।

एक गायक, संगीतकार, कलाकार अपने गायन, संगीत व कला के सहारे लोगों में करुणा, प्रेम व संवेदना का जागरण कर सकता है। आज देश में ऐसे ही गायकों व संगीतकारों की आवश्यकता है, जो अपने गायन से, संगीत से लोगों में अश्लीलता को नहीं, बल्कि आंतरिक उत्कृष्टता को उद्दीप्त कर सकें, प्रदीप्त कर सकें। कहने का तात्पर्य यह है कि हम ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा को बिकाऊ न होने दें, वरन उसे व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्वहित में अर्पित करते चलें। परहित में अर्पित, समर्पित प्रतिभा ही सर्वत्र पूज्य होती है, वंदनीय होती है। बिकाऊ प्रतिभा पैसे दे सकती है, शोहरत दे सकती है, पर सम्मान, आत्मसंतोष, आत्मगौरव कदापि नहीं दे सकती। शास्त्रों में दान की बड़ी महिमा गाई गई है। वेद की तो स्पष्ट उद्घोषणा ही है—

शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त सं किर।

—अथर्व. 3.24.5

अर्थात सौ हाथों से धन अर्जित करो और हजार हाथों से उसका दान करो। वहीं श्रीमद्भागवत व गीता की स्पष्ट घोषणा है कि जो खुद कमाता है और खुद ही खाता है तो वह पाप को ही खाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि परहित में अर्पित-समर्पित जीवन ही श्रेष्ठ जीवन है, वरना अपने पेट व परिवार के लिए तो पशु-पक्षी भी जी लेते हैं। देना तो हमें प्रकृति भी हर-पल सिखाती है। सूर्य अपनी रोशनी, फूल अपनी खुशबू, वृक्ष अपने फल, नदियाँ अपना जल, धरती अपना सीना छलनी करके भी दोनों हाथों से हमें अन्न, जल, औषधि, फल आदि सब कुछ देते हैं।

इसके बावजूद न तो सूर्य की रोशनी कभी कम हुई, न फूलों की खुशबू, न वृक्षों के फल कम हुए और न ही नदियों का मीठा जल। सूर्य समुद्र का जल सोखता है, तो उसी जल से पुन: पृथ्वी को तर भी कर देता है, तृप्त भी कर देता है। एक से लेकर दूसरे को और दूसरे से लेकर पहले को देना ही सृष्टि का काम है। प्रकृति का यह शाश्वत नियम है कि हम प्रकृति को जो कुछ भी देते हैं, उसे वह कई गुना अधिक करके वापस दे देती है। खेत में हम एक बीज बोते हैं और उसके हजारों बीज बनाकर हमें प्रकृति वापस कर देती है।

विज्ञान का भी यह नियम है कि हर क्रिया के प्रति और विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया होती है। अस्तु दान के रूप में हम जो भी खुशियाँ व आनंद दूसरों को देते हैं, वह आनंद और खुशियाँ कई गुना अधिक होकर हमें मिल जाती हैं। दान, परोपकार, त्याग आदि से मिलने वाले आत्मिक आनंद के पीछे भी यही कारण है। स्वस्थ, सभ्य व समृद्ध समाज के लिए भी लोगों में दान की वृत्ति का होना आवश्यक है। देने की प्रवृत्ति होने के कारण ही हम सेवा व सहयोग के लिए आगे आ पाते हैं।

दान की वृत्ति कम होने का अर्थ है, समाज में स्वार्थवृत्ति का बढ़ना। स्वार्थवृत्ति से किसी भी व्यक्ति, समाज व राष्ट्र का कल्याण नहीं हो सकता। राष्ट्रीय आपदा, महामारी व प्राकृतिक आपदाओं के समय दानशील लोगों के कारण ही कोई राष्ट्र पुन: उठ खड़ा होता है। व्यक्ति के देने की वृत्ति सिकुड़ते जाने के कारण ही आज परिवार व समाज में प्रेम, सौहार्द व समरसता के लाले पड़ते हुए देखे जा सकते हैं।

दान न सिर्फ व्यक्तिगत जीवन, वरन पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व वैश्विक जीवन के लिए भी आवश्यक है। अपनी दानशीलता के कारण ही भारत जगद्गुरु रहा है। चाहे वह भौतिक संसाधनों का दान हो या फिर धर्म, अध्यात्म व योग का दान हो—हर दृष्टि से भारत ने समय-समय पर विश्वमानवता की सेवा की है।

दुनिया के जिस किसी भी देश में जब भी कोई प्राकृतिक आपदा आई है तो भारत हमेशा उसकी मदद को आगे आया है। वर्तमान में भी भारत ने कोविड-19 महामारी के निराकरण हेतु दुनिया के विभिन्न देशों में वैक्सीन की आपूर्ति कर अपनी महानता व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को चरितार्थ किया है।

संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जिसके पास देने के लिए कुछ न हो। यदि हमारे पास धन नहीं है तो समय व श्रम तो है। हम इसे भी परहित में अर्पित कर सकते हैं। हम धन, सामग्री या प्रतिभा आदि से ही किसी की सहायता कर सकते हैं—ऐसा बिलकुल भी नहीं है। हम अपनी करुणा व संवेदना से भी दूसरों को निहाल कर सकते हैं। हम करुणा व प्रेम भरी बातों से दूसरों में आशा का संचार कर सकते हैं। उन्हें हताशा व निराशा से निकालकर हम उन्हें नवजीवन, नई दृष्टि दे सकते हैं, उन्हें पवित्र जीवन, आध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणा दे सकते हैं।

सभी प्रकार के दानों में ज्ञानदान को सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है। क्यों? क्योंकि अन्य प्रकार के दान तो व्यक्ति को तत्काल राहत दे सकते हैं, पर ज्ञान का दान व्यक्ति को नई दृष्टि देकर उसे हमेशा-हमेशा के लिए तृप्त कर देता है, निहाल कर देता है। इसलिए शादी, जन्मदिवस एवं अन्य पर्व-त्योहारों के अवसर पर कोई सत्साहित्य, जैसे वेद, पुराण, उपनिषद्, गीता, रामायण या परमपूज्य गुरुदेव द्वारा रचित साहित्य भेंट किए जाने की परंपरा विकसित करनी चाहिए। समाज में ज्ञान का जितना अधिक प्रसार होगा—समाज उतना ही सभ्य, स्वच्छ, स्वस्थ, शालीन व समृद्ध होता जाएगा।

वस्तुत: दान कोई धार्मिक, आध्यात्मिक क्रिया मात्र नहीं है, वरन यह हमारा पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व वैश्विक कर्त्तव्य भी है। यह ऐच्छिक अथवा वैकल्पिक नहीं, वरन हमारे जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है, जिसका पालन अवश्य ही किया जाना चाहिए।

दान दरअसल व्यक्ति में सेवा, श्रद्धा, संवेदना आदि मानवीय गुणों के संवर्द्धन का सशक्त साधन है। आमतौर पर हम एक ऐसी दुनिया में रहते हैं, जिसमें हम मात्र स्वयं का व परिवार का ही हित साधन करने में लगे होते हैं, पर दान करने की प्रवृत्ति से धीरे-धीरे हमारा दायरा बढ़ता जाता है। हमारी दुनिया बड़ी होती जाती है, जिससे हम मात्र स्वयं या परिवार के हित साधने तक ही सिमटकर नहीं रह जाते, वरन संपूर्ण संसार को ही अपना परिवार मान उसके कल्याण में जुट जाते हैं। फलस्वरूप हम संकीर्णता से उदारता की ओर बढ़ चलते हैं। हमारा आत्मिक विस्तार होने लगता है।

दान की शुरुआत किसी को कुछ देने से होती है और यह एक बहुत ही सामान्य-सी क्रिया जान पड़ती है, पर यह सामान्य दिखते हुए भी असामान्य है। ऐसा इसलिए क्योंकि दान व्यक्ति में देने की प्रवृत्ति पैदा करता है, दान देते-देते व्यक्ति में देवत्व की प्रवृत्ति पैदा होने लगती है। जिसकी शुरुआत हमने पुण्य पाने या बदले में कुछ पाने की आशा से शुरू की थी, वह कालांतर में हमारा स्वभाव बन जाता है। हमारे अंदर जो संकीर्णता थी, स्वार्थपरता थी; वह देने के अभ्यास से धीरे-धीरे दूर होने लगती है, मिटने लगती है और हमारे अंदर देवत्व की अविरल धारा बहने लगती है।

जैसे नदी के बीच में रखी बड़ी-बड़ी चट्टानों के हटते ही नदी में जल का प्रवाह उमड़ पड़ता है—वैसे ही दान देते-देते हमारे अंदर प्रेम का प्रवाह उमड़ पड़ता है, तब हमारे लिए किसी को कुछ देना कोई सामान्य-सी क्रिया मात्र नहीं रह जाती, बल्कि देना ही हमारा स्वभाव बन जाता है, देना ही हमारा संस्कार बन जाता है। किसी के आँसू पोंछकर, उसकी आँखों में आई चमक को देखकर, उसके चेहरे पर आई मुस्कान को देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो याचक रूप में साक्षात् नारायण ही मुस्करा रहे हों और वे हमारे द्वारा अर्पित दान को साक्षात् प्रकट हो स्वीकार रहे हों। तब हमारा दान देना भी पूर्णत: निष्काम हो जाता है। वास्तव में दान में ऐसी निष्कामता ही तो सर्वव्यापी परमात्मा की सच्ची पूजा है।

प्रारंभ में दान देते हुए ऐसा जान पड़ता है, मानो हम किसी पर उपकार व एहसान कर रहे हों, पर निष्कामता आ जाने पर ऐसा जान पड़ता है, मानो 'मैं' तो बिलकुल ही नहीं रह गया, बल्कि वे जो मेरे दान को स्वीकार कर रहे हैं, वे मेरी वस्तु को, मेरी पूजा को, मेरी प्रतिभा को स्वीकार कर मुझ पर ही बहुत बड़ा उपकार व एहसान कर रहे हैं; क्योंकि उनके कारण ही तो मेरे मन की मलिनता मिट रही है। चित्त शुद्ध हो रहा है।

ऐसे में मन में भाव उमड़ता है कि मैं नर से नारायण होने की ओर अग्रसर हो चलूँ, मैं स्वयं के भीतर करुणा, प्रेम व संवेदना के उमड़ते हुए सागर से आनंदित होता चलूँ।

तब ऐसा लगता है कि मेरी सेवा-सहायता को मनुष्य रूप में साक्षात् नारायण ही स्वीकार कर रहे हैं; क्योंकि यह पूरा विश्व-ब्रह्मांड ही सर्वव्यापी परमात्मा का रूप है।

अस्तु ब्रह्मांड में की गई किसी की सेवा-सहायता भी साक्षात् ईश्वर की ही पूजा है। इसलिए हमें उन सबका ऋणी होना चाहिए, जो हमारी सेवा स्वीकार करते हैं और हमारे लिए मुक्ति व आनंद का मार्ग प्रशस्त करते हैं और फिर संसार में जो भी है, वह सब भगवान का ही तो है। फिर हम संसार से पाई गई कोई वस्तु संसार को ही अर्पित कर स्वयं के लिए कोई मान-बड़ाई क्यों चाहें?

एक राजा भी ऐसी ही दिव्य भावना के साथ हर दिन लोगों को दान दिया करता था, पर दान देते समय राजा अपनी नजरें झुका लिया करता था। एक बार एक व्यक्ति ने पूछा—''राजन्! आप दान देते समय अपनी नजरें क्यों झुका लेते हैं?'' राजा ने कहा—''जब मैं किसी को दान देता हूँ, तो लोग मेरी जय-जयकार करते हैं। शायद उन्हें लगता है कि उन्हें दान मैं दे रहा हूँ, पर सच तो यह है कि मेरे पास जो भी है, सब भगवान का ही दिया हुआ है, इसलिए असली दाता तो भगवान ही हैं, मैं नहीं, मैं तो निमित्त मात्र हूँ। इसलिए लोगों के मुख से अपनी जय-जयकार सुनकर मुझे शरम आती है, इसलिए मैं नजरें झुका लेता हूँ।'' वास्तव में यह कितनी उदात्त भावना है। ऐसी भावना के साथ किया गया दान ही सर्वश्रेष्ठ दान है और दाता के लिए मोक्षदायक है, मुक्तिदायक है, आनंददायक है। तभी तो स्वामी विवेकानंद कहा करते थे—''मैं उस प्रभु का सेवक हूँ, जिसे अज्ञानी लोग मनुष्य कहते हैं।''

वास्तव में हमें भी अपना समय, श्रम, प्रतिभा, धन आदि का अर्पण, समर्पण, विसर्जन—समाजरूपी, विश्वरूपी ईश्वर की सेवा में करना चाहिए। यह हमारे लिए अभीष्ट भी है और आनंददायी व कल्याणकारी भी। आइए हम भी बढ़ चलें दान से देवत्व की ओर।

❑

भारतीय सनातन संस्कृति के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से स्वामी विवेकानंद अमेरिका प्रवास पर गए। वे पैदल ही अमेरिका की एक सड़क से गुजर रहे थे। संन्यास धर्म के प्रतीक पवित्र गेरुए रंग का वस्त्र धारण किए वे निर्द्वंद्व चले जा रहे थे। संन्यास की महान परंपरा एवं भारतीय संस्कृति से अनभिज्ञ अमेरिका की स्थानीय जनता को इस प्रकार की वेशभूषा कुछ विचित्र जान पड़ी। सनातन संस्कृति से सर्वथा अपरिचित जनता स्वामी जी का उपहास करती उनके पीछे लग गई। आरंभ में तो स्वामी जी उन अज्ञानियों की उपेक्षा कर अपनी राह चलते रहे, किंतु उन्हें अपनी हरकतों से किसी भी प्रकार बाज न आता देख वे थोड़ा रुके और उन्हें संबोधित करते हुए बोले—''सज्जनो! आपके देश में सभ्यता की कसौटी पोशाक है, परंतु मैं जिस देश से आया हूँ, वहाँ मनुष्य की पहचान कपड़ों से नहीं, बल्कि उसके चरित्र से होती है।'' ऐसे जवाब की उनमें से किसी को भी आशा नहीं थी। स्वामी विवेकानंद के तेजस्वी वचन सुनकर सारी भीड़ स्तब्ध रह गई। अपने आनंद में स्वामी जी सहज भाव से आगे बढ़ गए। सत्य ही है, व्यक्ति की परख उसके बाह्य रूप से अथवा वेशभूषा से नहीं, वरन आंतरिक श्रेष्ठता से की जाती है।

आत्मिक ज्ञान है व्यक्तित्व का आधार

चारों ओर से पर्वतीय मालाओं में घिरे मैदानी क्षेत्र पर स्थित एथेंस की खूबसूरत नगरी देखते ही बनती थी। रहन-सहन की दृष्टि से वहाँ स्थित पर्वतों पर असमय घटते-बढ़ते तापमान के परिणामस्वरूप, उस ओर से मैदानों की तरफ बढ़ती-बहती हवाएँ इलाके को गरम कर आम जनजीवन में समस्या का कारण बनती थीं। शीत ऋतु के आगमन को अधिक समय न था, किंतु यहाँ वस्तुस्थिति सर्वथा भिन्न थी। अब भी मध्याह्न के समय ग्रीष्म की ज्वलंत तीक्ष्णता का सामना कर पाना बरदाश्त से बाहर ही होता था। ऐसी प्राकृतिक किंतु प्रतिकूल परिस्थितियों में रात्रि से सुबह तक का समय ही मंद शीतलता भरा सुकून प्रदान करता—जिसे लोग बाहरी दौड़-भाग से संबंधित कार्यों को करने के उपयोग में लाया करते थे।

यूनान का प्रतिष्ठित नगर एथेंस आज दर्शन एवं कला के आधार पर विकसित हुई पश्चिमी मानवीय सभ्यता का प्रमुख केंद्र बन चुका था। वहीं इस पुरातन नगरी ने लोकतंत्र की सुनियोजित व्यवस्था को सर्वप्रथम कायम कर विश्व के समक्ष अपनी विशिष्ट पहचान भी बनाई थी। जिसकी वर्तमान दशा को देखते हुए व निष्पक्ष विश्लेषण करते समय प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात मानवीय सभ्यता के विकासशील क्रम पर अपनी दार्शनिक अनुभूतियों के आधार पर प्रकाश डालते हुए शिष्यों से कहने लगे—"यहाँ यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि संसार कभी भी एक ही सिद्धांत की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता है। बदलते समय के साथ-साथ समाज की रीति-नीति में विवेकसम्मत परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है और यदि इस ओर से किसी भी प्रकार की उपेक्षा बरती गई हो तो देर-सबेर समूचा तंत्र पथभ्रष्ट हो विपत्ति में पड़ जाता है।"

उच्च-गंभीर विषयों पर अपने मंतव्य शिष्यों के सम्मुख प्रस्तुत करते सुकरात निमग्न थे। तभी एक ज्योतिषी घूमता-घामता वहाँ आ पहुँचा। भद्र और उदार लग रहे सुकरात व उनके शिष्यों को ध्यानपूर्वक देख ज्योतिषी को एक युक्ति सूझी। उसे लगा कि अपनी विद्या का छद्म प्रयोग करके कुछ धन अर्जित करने का यह उपयुक्त अवसर है।

वह सुकरात के समक्ष ज्योतिष विद्या के प्रकांड विद्वान होने का दावा करते हुए कहने लगा—"मैं अपनी ज्योतिष विद्या के कुशल ज्ञान के आधार पर तुम्हारी आकृति को देखकर बहुत कुछ समझ पा रहा हूँ। यदि चाहो तो मेरे माध्यम से इसे तुम भी जान सकते हो। मात्र चेहरा देखकर किसी भी व्यक्ति के स्वभाव व चरित्र के बारे में बता पाना मेरे लिए बड़ा सहज है। तुम मुझे इसके लिए एक अवसर प्रदान करके देखो।"

सुकरात अच्छे दार्शनिक थे, पर दिखने में बिलकुल सुंदर नहीं थे। अपने बारे में वे खुद भी कहते थे कि मैं बदसूरत हूँ। ज्योतिषी के दावे को समर्थन देते सुकरात अपने शिष्यों को देख मुस्कराए व उन्हें कहने लगे—"तुम सभी आज पहले इससे मेरी आकृति का सत्य सुन लो।" इतना कहने के उपरांत सुकरात ठिठके और गंभीर होते आगे कहने लगे—"अपनी आकृति का रहस्य बाद में मैं तुम्हें बताऊँगा।" सुकरात ने ज्योतिषी की ओर देखा व सिर हिलाकर अनुमति देते हुए अपनी विद्या का परीक्षण आरंभ करने का इशारा किया।

ज्योतिषी, सुकरात का चेहरा देखकर उपेक्षित अंदाज में कहने लगा—"इसके नथुनों की बनावट बता रही है कि इस व्यक्ति में क्रोध की भावना प्रबल है। इसके माथे और सिर की आकृति के कारण यह निश्चित रूप से लालची होगा।" अपने गुरु के संबंध में अपमानजनक टिप्पणी सुन वहाँ उपस्थित शिष्य नाराज होने लगे व सुकरात से निवेदन करने लगे—"महाशय! यह व्यक्ति हमें झक्की लगता है। आप आज्ञा दें तो अभी इसकी अक्ल ठिकाने लगा देते हैं।"

सुकरात ने शिष्यों को रोककर ज्योतिषी को निर्भीक होकर अपनी बात आगे बढ़ाने का इशारा किया। ज्योतिषी, शिष्यों की बातों को नजरअंदाज करता आगे कहने लगा—"इसकी ठोड़ी की रचना कहती है कि यह सनकी है। इसके होठों और दाँतों की बनावट के अनुसार यह व्यक्ति सदैव देशद्रोह करने के लिए प्रेरित रहता है।"

इस घटना के साक्षी शिष्य सब कुछ देख यह समझ नहीं पा रहे थे कि आखिर क्यों गुरुदेव इस दुष्ट को अपनी अवज्ञा का अवसर प्रदान किए जा रहे हैं? सुकरात ने ज्योतिषी द्वारा ज्योतिष विद्या के आधार पर स्वयं के संबंध में लगाए गए अनुमानित तथ्यों को बड़े ही ध्यानपूर्वक सुना व अंत में ज्योतिषी की प्रशंसा कर उसे इनाम देकर विदा किया। गुरु आदेश से विवश सुकरात के शिष्य गुरु के हुए इस अपमान को चुपचाप सहन करने के कारण अधीर हो रहे थे। वे सभी सुकरात द्वारा ज्योतिषी के प्रति किए इस विचित्र व्यवहार से भौंचक्के भी थे।

सुकरात शिष्यों की उलझन को सुलझाते हुए कहने लगे—''यथार्थ को छिपाना ठीक नहीं। ज्योतिषी ने मेरे संबंध में जो कुछ बताया, वे सभी दुर्गुण मुझमें हैं। यही मेरी स्थूल आकृति में निहित सत्य है, किंतु उस ज्योतिषी से एक भूल अवश्य हुई, वह यह कि उसने मेरी आत्मिक ज्ञान की शक्ति पर जरा भी गौर नहीं किया। उस ज्ञान की मदद से मैं निरंतर अपने विवेक को जाग्रत रखकर अपने समस्त दुर्गुणों पर अंकुश लगाए रखता हूँ।''

सुकरात का शिक्षण सदैव आचरणोन्मुख रहा था। सुकरात को मौलिक शिक्षा और आचरण द्वारा उदाहरण देना ही पसंद था। उन्हें हवाई बहस बिलकुल पसंद न थी। यूनान में गंभीर विद्वान और ख्याति प्राप्त हो जाने पर भी वे सामान्य स्थिति में ही रहे। ज्ञान का संग्रह और प्रसार ही उनके जीवन का उद्देश्य था।

उस दिन इस घटना के साक्षी शिष्यों ने सुकरात के यथार्थ आचरण से निस्सृत मौलिक ज्ञान को पाया था। ज्योतिष विद्या का आकृति विज्ञान भाग्यवाद का किसी भी प्रकार समर्थक नहीं होता। विवेक के जागरण व तदनुरूप आचरण से किस प्रकार गुण, कर्म और स्वभाव में आमूलचूल परिवर्तन संभव है—यह आज महान दार्शनिक सुकरात ने अपने जीवंत उदाहरण से दरसाया था। जिस तत्त्वज्ञान को हृदयंगम कर शिष्य अपने गंतव्य को लौट गए। ❑

एक पिता के चार पुत्र थे। चारों में प्रायः झगड़ा बना रहता। इससे उनके परिवारजनों की शारीरिक और आर्थिक ही नहीं, वरन मानसिक और बौद्धिक अवनति भी होती जा रही थी। अपने जीवन के अंतिम पड़ाव में परिवार की ऐसी दुर्दशा को देख पिता अत्यंत दुःखी थे।

मरते समय उन्होंने अपने सभी पुत्रों को बुलाया और उन्हें निकट ही पड़े एक लकड़ी के गट्ठर की ओर इशारा किया और आदेश दिया—इसे तोड़ो। लड़कों ने भरसक प्रयत्न किया, परंतु असफल रहे। पिता यह दृश्य देख रहे थे व अगले क्रम में उन्होंने कहा—''इस गट्ठर में से एक-एक लकड़ी को चुनकर तोड़ो।'' इस प्रयास में वे सफल रहे, अब वह लकड़ियाँ बड़े आराम से टूटने लगीं।

पुत्रों को अपनी अंतिम सीख देते हुए पिता कहने लगे—''प्रिय पुत्रो! लकड़ी के इस गट्ठर की भाँति यदि तुम सभी मिलकर रहोगे तो सदैव उन्नतिशील रहोगे और कोई तुम्हारा कुछ बिगाड़ न सकेगा और यदि आपस में फूट रही तो इसी प्रकार जैसे लकड़ियाँ क्षण भर में ही टूट गईं—ऐसे ही विनष्ट हो जाओगे।'' पिता से मिले इस बहुमूल्य पाठ को सभी पुत्रों ने अपनाया व उनका परिवार सुख-शांति से भरा स्वर्ग समान बन गया।

बुद्धत्व का करो जागरण

भगवान बुद्ध भ्रमण करते हुए जगह-जगह उपदेश किया करते थे। उनके उपदेशों को सुनकर लोग बहुत प्रभावित होते थे। उनके उपदेश सुनकर कुछ लोग भगवान बुद्ध के ज्ञान को अपने जीवन में जी कर, उतार कर उसकी अनुभूति करते और आनंदित होते, पर कुछ ऐसे लोग भी होते जो बुद्ध के उपदेश की प्रशंसा तो करते, पर उसे स्वयं के जीवन में जीने का अभ्यास नहीं करते। फलस्वरूप ऐसे लोग बुद्ध के ज्ञानोपदेश से कोई लाभ नहीं उठा पाते थे।

संयोग से बौद्ध भिक्षुओं में भी बहुत ऐसे थे, जो बुद्ध के आस-पास होते हुए भी, उनके उपदेशों को सुनकर भी उसके वास्तविक लाभ से वंचित ही रहते थे। एक दिन गौतम बुद्ध प्रातः भ्रमण पर निकले थे। उनके साथ बौद्ध भिक्षुओं का एक समूह भी था। बुद्ध उन्हें एक वृक्ष के नीचे बैठकर प्रतीक्षा करने को कहकर वहाँ से कुछ कदम आगे एक नदी में स्नान करने चल दिए। स्नान के पश्चात वे नदी किनारे कुछ देर शांत चित्त ध्यान मुद्रा में बैठे रहे।

उधर वृक्ष के नीचे बैठे भिक्षु आपस में बातें करते हुए एकदूसरे से प्रश्न करने लगे। एक भिक्षु ने पूछा—"इस संसार में सबसे बड़ा सुख क्या है?" उत्तर में किसी दूसरे भिक्षु ने कहा—"यदि संसार में सुख होता तो हम संसार को छोड़कर भिक्षु ही क्यों बनते?" तभी वहाँ बैठे किसी तीसरे भिक्षु ने कहा—"संसार में दुःख-ही-दुःख है, इसीलिए तो व्यक्ति संन्यासी बनता है, वरना कोई संन्यासी ही क्यों बनेगा?"

तभी वहाँ बैठे चौथे भिक्षु ने कहा—"संन्यास का अर्थ ही है कि संसार व्यर्थ हो गया।" तभी एक अन्य भिक्षु ने कहा—"भिक्षुओं में कई ऐसे होंगे, जिनकी पत्नी मर गई होगी और इसलिए वे संन्यासी हो गए, किसी का व्यापार-धंधा चौपट हो गया होगा, इसलिए वह संन्यासी बन गया। तुम सब देखना ऐसे बहुत से लोग भी संन्यासी होंगे।"

वे सभी आपसी बातचीत में इतने निमग्न थे कि उन्हें इसका आभास भी नहीं हुआ कि गौतम बुद्ध उस वृक्ष के पास पहुँच चुके हैं और उन सबकी बातें भी सुन रहे हैं। बुद्ध को देखते ही वे सभी चुप हो गए। बुद्ध बोले—"तुम सभी धन-सुख, स्वाद-सुख, काम-सुख, भोजन-सुख आदि की बातें कर रहे हो? यह सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है। अगर इन सबमें सुख है तो तुम यहाँ क्यों आए हो? संसार में दुःख है यह भी सत्य है; पर सुखी वे ही हैं, जिनके पास बोध है, ज्ञान है। जिसे बोध है, वह सुख और दुःख के बंधन से मुक्त है। वह सुख और दुःख से परे है और इसलिए वह सदा आनंदित है।"

भगवान बुद्ध ने कहा—"सुख बुद्धत्व में है। तुम्हारे भीतर बुद्ध का जन्म हो जाए तो सुख है। तुम्हारे भीतर बुद्ध का अवतरण हो जाए तो सुख है। तुम्हारे भीतर बुद्ध उत्पन्न हो जाए तो सुख है। जिनका बुद्धत्व जाग गया, जिनके भीतर बुद्धत्व पैदा हो गया, उनकी बातें सुनने में सुख है। उनके पास उठो-बैठो, जिनके भीतर समाधि घटी है, जिनके भीतर यह क्रांति घटी है, जिनके भीतर यह सूरज निकला है, जिनके भीतर प्रभात हुआ है, जहाँ सूर्योदय हुआ है, वहाँ बैठो, उनके पास बैठो, मगर ध्यान रखना उनके पास बैठना मात्र नहीं है, वरन वह तुम्हें भी करना है। तुम्हें अपने जीवन में अष्टांग मार्ग का अभ्यास स्वयं भी करना है।"

भगवान बुद्ध बोले—"तुम बुद्धों को सुनो अवश्य, पर वहीं रुक मत जाओ। तुम स्वयं भी बुद्ध बनने की चेष्टा करो, तुम अवश्य सुनो बुद्धों के वचन; पर बुद्ध जैसे बनने की चेष्टा भी करो, प्रयास भी करो, अभ्यास भी करो। मात्र सुनने से नहीं, बल्कि उन सुनी हुई बातों को करने से ही तुममें वह क्रांति घटेगी, तुम्हारे भीतर भी प्रभात होगा और जिस दिन तुम बुद्ध बन गए उसी दिन, उसी पल ही तुम्हें परम सुख प्राप्त होकर रहेगा।" बौद्ध भिक्षु भगवान बुद्ध के कहने के आशय को समझ गए, वे सभी उनके चरणों में झुक गए और स्वयं के भीतर बुद्धत्व पैदा करने के प्रयास-पुरुषार्थ में लग गए। ❑

समयातीत है समाधि

इच्छारहित मृत्यु जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कर देती है। इच्छा का समाप्त हो जाना ही मोक्ष है, बंधन से मुक्ति है। कृष्ण अर्जुन से गीता में कहते हैं—''परम सिद्धि को प्राप्त हुए महात्मा जन मुझे पाने के बाद, दुःख का जहाँ घर है, ऐसे क्षणभंगुर जीवन को जीने के लिए फिर नहीं आते हैं; क्योंकि हे अर्जुन! ब्रह्मलोक से लेकर सभी लोक पुनरावर्ती स्वभाव वाले हैं, परंतु हे कुंतीपुत्र! मुझसे मिल जाने के बाद उनका पुनर्जन्म नहीं होता है।''

इसमें गहरा तत्त्वज्ञान है। यह गहनतम तर्क है, अंतदृष्टि है। दुःख का घर है पुनर्जन्म। पुनर्जन्म का प्रारंभ जीवन की आकांक्षा है, जीवेषणा है कि और मैं जीता ही चला जाऊँ। एक इच्छा पूरी नहीं होती कि वह दस इच्छाओं को जन्म दे जाती है और किसी भी इच्छा को पूरा करना हो तो जीवन चाहिए, समय चाहिए अन्यथा इच्छा पूरी नहीं होगी।

इच्छा के लिए भविष्य चाहिए। अगर भविष्य न हो तो इच्छा क्या करेगी अगर मैं इसी क्षण मर जाने वाला हूँ तो इच्छा करना व्यर्थ हो जाएगा; क्योंकि इच्छा के लिए जरूरी है कि कल हो, आने वाला दिन हो। आने वाला दिन हो तो ही इच्छा को फैलाया जा सकता है और इसके लिए श्रम किया जा सकता है। इच्छा पूरी हो सके तो उसको पूरा करने के लिए समय की जरूरत है।

अगर इच्छा पूरी करनी है तो समय के बिना पूरी नहीं हो सकती। इसके लिए समय चाहिए और अगर हर इच्छा दस इच्छाओं को जन्म दे जाती हो तो हर इच्छा के बाद दस गुना समय चाहिए। हर जीवन के बाद हम दस और नई इच्छाएँ पैदा कर लेते हैं।

मजेदार बात यह है कि पूरे जीवन हम इच्छाओं को पूरा करने की कोशिश करते हैं और आखिर में हम पाते हैं कि कोई इच्छा पूरी ही नहीं हुई, मरते क्षण हम और भी इच्छाओं को जिंदा कर लेते हैं। तब मरते क्षण में एक और जन्म की आकांक्षा पैदा होती है; क्योंकि इच्छा है तो एक जीवन और चाहिए और जीवन को पाने की इच्छा पुनर्जन्म बन जाती है।

भगवान कृष्ण कहते हैं—''पुनर्जन्म ही दुःख का घर है। पुनर्जन्म होता है जीवन की आकांक्षा से, जीवन की आकांक्षा होती है, इच्छा को तृप्त करने के लिए समय की माँग से। पुनर्जन्म का सूत्र या दुःख का आधार इच्छा है, तृष्णा है। अगर हमें कोई भी इच्छा नहीं है तो हम कहेंगे कि आने वाले कल की मुझे अब जरूरत नहीं रही।

ईसामसीह से किसी ने पूछा—''आपके मोक्ष में सबसे खास बात क्या होगी?'' शायद पूछने वाले ने सोचा होगा कि वे कहेंगे—''प्रभु का दर्शन होगा, परम आनंद होगा, मुक्ति होगी, शांति होगी।'' लेकिन उन्होंने कहा—''वहाँ समय नहीं होगा। समय नहीं होगा, इसका अर्थ यही है कि वहाँ कोई इच्छा नहीं है, जिसके लिए समय की जरूरत पड़े। इच्छा नहीं होगी, समय नहीं होगा तो वहाँ पुनर्जन्म नहीं होगा। वहाँ कल होगा ही नहीं। वहाँ सिर्फ आज ही होगा। शायद आज कहना भी ठीक नहीं है, अभी ही होगा, बस, यही क्षण होगा और यह क्षण अनंत होगा। यह क्षण कहीं समाप्त नहीं होगा और कहीं प्रारंभ नहीं होगा। समय वहाँ नहीं होगा।''

समय की जरूरत इसलिए है; क्योंकि इच्छा की दौड़ के लिए स्थान चाहिए। इच्छा दौड़ती है समय में। इच्छा स्थान में नहीं दौड़ती है। अगर हमारे शरीर को दौड़ना है तो स्थान की जरूरत पड़ेगी, लेकिन अगर हमारे मन को दौड़ाना है तो स्थान की कोई भी जरूरत नहीं, समय काफी है। इसलिए हम सपने में भी दौड़ सकते हैं। सपने में कोई स्थान नहीं होता, लेकिन समय होता है, काल होता है। सपने में भी दौड़ सकते हैं। आरामकुरसी पर लेटकर आँख बंद करके भी अनंत-अनंत यात्राएँ कर सकते हैं। वे यात्राएँ इच्छाओं की यात्राएँ हैं और समय में घटित होती हैं।

भगवान महावीर से कोई पूछता है—''जब समाधि उपलब्ध हो जाती है तो हमारे भीतर से कौन-सी चीज निकल जाती है।'' तो वे कहते हैं—''समय।'' समय तब हमारे भीतर से निकल जाता है, क्योंकि जिस व्यक्ति के भीतर समाधि फलित होती है, उसके भीतर इच्छा की दौड़ नहीं रह जाती और उस दौड़ का जो मार्ग है, वह व्यर्थ हो जाता है, वह निकल जाता है।

इसलिए किसी देश में, किसी काल में, किसी महान व्यक्ति ने समाधि की परिभाषा की हो, उसमें बातें अलग हों, पर एक बात अनिवार्य रूप से समान है और वह है कि समाधि समयातीत है, कालातीत है। उसे पाने के लिए अपने प्रयासों में तेजी लाओ, समग्रता लाओ। अगर इच्छा की है तो इच्छा के स्वाद को और तीव्र करो। अगर उस तरफ बढ़े ही हो तो फिर डरो मत तिक्त स्वाद से।

उन्माद की परिपक्वता के लिए—पागलपन पूरा होना चाहिए। कच्ची चाहत से काम चलने वाला नहीं है; चाहत पक्की होनी चाहिए। भला ऐसे धीरे-धीरे क्या चलना? एक पाँव इधर तो एक पाँव उधर। समय के नृत्य को और तेज करो। अब समय ज्यादा नहीं है, चूको मत—जल्दी करो व तेजी लाओ। साधना अपनी पूरा त्वरा पर ही होनी चाहिए। सौ डिगरी पर पानी उबलता है तो भाप बन पाता है। साधना भी जब सौ प्रतिशत होती है तो अहंकार विलीन हो जाता है। संपूर्णता में पहुँचना ही होगा। इसके सिवा कोई अन्य मार्ग नहीं है। इसी मार्ग पर सभी शंकाओं का समाधान है। ❑

योगी चांगदेव की आयु 1400 वर्ष की थी। उन्होंने संत ज्ञानेश्वर की कीर्ति सुनी तो उनके मन में यह विचार आया कि क्यों न उनसे सद्भावपूर्ण पत्र व्यवहार किया जाए। पत्र लिखने के लिए योगी चांगदेव ने एक कोरा कागज अपने हाथ में लिया ही था कि उनके समक्ष यह दुविधा उत्पन्न हुई कि भला किस संबोधन के साथ इस पत्र को लिखा जाए। दीर्घकाल तक योग को साधने व सिद्धियों के ज्ञाता योगी चांगदेव के स्वयं के अभिमान ने उन्हें कहा कि संत ज्ञानेश्वर तो मात्र 16 वर्ष के हैं तो उन्हें 'पूज्य' कैसे लिखें? इतने में भीतर से विवेक की धीमी आवाज ने इतने बड़े संत को 'चिरंजीव' लिखे जाने पर आपत्ति जताई। असमंजस की अवस्था में खिन्न हो चांगदेव ने बिना कुछ लिखे ही कोरा कागज पत्र के रूप में संत ज्ञानेश्वर को भेज दिया।

बहन मुक्ताबाई ने योगी चांगदेव के पत्र के प्रत्योत्तर में लिखा—"आपकी आयु 1400 वर्ष हो गई, फिर भी आप कोरे-के-कोरे ही रहे।" संत ज्ञानेश्वर की ओर से आए इस पत्र को पढ़कर चांगदेव को लगा कि भूल हुई है, अतः वे उनसे मिलने निकल पड़े। सिद्धि बल के प्रदर्शन के लिए योगी चांगदेव ने शेर पर सवारी की और साँप का चाबुक बनाया। चांगदेव के इस रूप को देख ज्ञानेश्वर समझ गए कि योगी का अभिमान अभी गया नहीं है। योगी चांगदेव की अगवानी के लिए वे जिस दीवार पर बैठे थे, उसे ही चलने की आज्ञा दे डाली। दीवार को चलता देख चांगदेव को बोध हुआ कि जानवरों को वश में करने वाले से जड़ पदार्थों को वश में करने वाला श्रेष्ठ है। चांगदेव ने अपनी आयु और सिद्धियों का अहंकार छोड़ा और संत ज्ञानेश्वर के शिष्य बन गए। अधिक आयु होने पर भी विद्यासंपन्न अल्पायु साधकों के समक्ष सिद्धियाँ तुच्छ हैं।

एक महत्वपूर्ण सच्चाई है मरणोत्तर जीवन

मृत्यु के बाद भी जीवन का अस्तित्व बना रहता है। स्थूलकाया के विनष्ट हो जाने के पश्चात भी मृतात्मा सूक्ष्मशरीर का आश्रय लेकर अपने अस्तित्व का परिचय यदा-कदा देती रहती है। 'लाइफ बियॉण्ड डेथ, ग्रेट मिस्ट्रीज ऑफ आफ्टरलाइफ' जैसी अनुसंधानपूर्ण पुस्तकों में इस संदर्भ में प्रमाणसहित अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं।

उनके अनुसार अशरीरी आत्माओं का अस्तित्व और उनके द्वारा मनुष्यों को सहयोग प्रदान करना एक उल्लेखनीय तथ्य है। साधारणतया उच्चस्तरीय महान आत्माएँ मरणोपरांत भी मनुष्य की सहायता करती देखी एवं सुनी जाती हैं। अपनी उदार प्रवृत्ति के कारण दूसरों को आगे बढ़ाने और खतरों से बचाने के लिए ऐसी आत्माएँ कतिपय घटनाओं का पूर्व संकेत भी प्रदान करती हैं।

जिस प्रकार उदार मनुष्य अकारण ही दूसरों की सेवा-सहायता करने के लिए तत्पर रहते हैं, वैसे ही ये सूक्ष्मशरीरधारी आत्माएँ लोगों को समाजोपयोगी ज्ञान देने एवं आत्मा का अस्तित्व शरीर न रहने पर भी बना ही रहता है—यह विश्वास दिलाने के लिए कुछ व्यावहारिक सहयोग देती रहती हैं।

'लाइफ बियॉण्ड डेथ' नामक अपनी सुप्रसिद्ध कृति में स्वामी अभेदानंद जी ने कहा है कि यूरोप और अमेरिका में भी एक समय ऐसी मान्यताएँ प्रचलन में थीं, जिनके अनुसार व्यक्ति सहजता के साथ अलौकिक या परोक्ष जगत की उपस्थिति पर विश्वास किया करते थे। इसका एक विकृत स्वरूप भुतहा मकानों में अनेकों उत्पातों का होना, भूतोन्माद जैसी घटनाओं का होना के रूप में देखा जा सकता है। यही कारण है कि वैज्ञानिक उपलब्धियों के आधुनिक समय में भी एक्जोरसिज्म जैसी घटनाओं पर जनसामान्य का विश्वास पश्चिम जगत में अत्यंत अधिक है।

वस्तुत: ऐसी घटनाएँ जीवात्मा की मरणोपरांत अतृप्त वासनाओं, तृष्णाओं के कारण हुआ करती हैं, जिनका अध्यात्म से कोई संबंध नहीं है। इस संबंध में स्वामी जी ने 'फ्री रिलीजियस असोसिएशन ऑफ अमेरिका' आदि अग्रणी संस्थाओं के मूर्धन्य वैज्ञानिक मनीषियों को अधिक अनुसंधान करने के लिए प्रेरित किया।

आत्मा की अमरता और इससे परमेश्वर का संबंध स्थापित करने की अध्यात्म विद्या का गहन अन्वेषण करने के लिए अनेकों अग्रणी वैज्ञानिकों को उन्होंने प्रभावित एवं प्रेरित किया। इनमें डॉ. एफ.डब्ल्यू.एच. मायर्स प्रमुख थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में कहा था कि 'मरणोत्तर जीवन क्या है'—अपने मित्रों को इसकी सही जानकारी अपनी मृत्यु के पश्चात वे अवश्य देंगे। उन्होंने अपने वचन का पालन भी किया।

स्वामी अभेदानंद जी ने लिखा है कि अपनी मृत्यु के ठीक एक माह के अंदर उसने अपने प्रिय मित्र सर ओलिवर लॉज से ख्यातिलब्ध माध्यम श्रीमती थोम्पसन के माध्यम से संपर्क किया था। मूर्च्छितावस्था में श्रीमती थोम्पसन के मुँह से श्री मायर्स की वाणी निकलने लगी। उसने कहा कि माध्यम के द्वारा अपने विचार व्यक्त करना बहुत कठिन है; क्योंकि अनुभवों को शब्दों द्वारा व्यक्त करना कठिन है।

अपनी स्थिति के बारे में बताते हुए डॉ. मायर्स की आत्मा ने कहा कि मृत्यु के समय उसे अनुभव हुआ कि मानो वह किसी अनजान मार्ग से जा रहा है और किसी नए नगर में रास्ता भटक गया है। वहाँ पर उसे ऐसे लोग मिले, जिन्हें वह पहचानता था। इन्हें देखने पर उसे लगा मानो वह कोई दृश्य देख रहा हो। यह बात उन्होंने अपनी पुस्तक 'आवर इटरनिटी' में विस्तारपूर्वक बताई है।

इसी प्रकार अमेरिकन साइकिक रिसर्च सोसायटी के सचिव डॉ. हॉजसन ने बताया है कि सर विलियम जेम्स ने भी मायर्स की तरह कहा था कि वे भी मृत्यु के बाद अपने मित्रों को मरणोत्तर जीवन के बारे में अपना निजी अनुभव अवश्य बताएँगे।

दिसंबर, 1991 के टाइम्स के अनुसार तत्कालीन अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंटिफिक रिसर्च के प्रमुख और

मिशिगन यूनिवर्सिटी के एप्लाइड मैथमेटिक्स के प्रोफेसर श्री सी.एन. जान्स ने सर विलियम जेम्स की मृत्यु के बाद अपना वायदा पूरा करने का पूरा विवरण दिया है। उसके अनुसार उनकी आत्मा के साथ प्रथम संपर्क अक्टूबर, 1990 में हुआ था। इसके बाद पाँच अन्य संपर्क मार्च, 1991 तक हुए थे।

इन संपर्कों में प्रो. जेम्स ने अपनी व्यक्तिगत सत्ता-आइडेन्टिटी स्पष्ट रूप से व्यक्त की थी। श्री जॉन्स और अन्य प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों की उपस्थिति में प्रो. जेम्स ने कहा था कि वह इसलिए अत्यंत खुश था कि कुछ लोग यह चाहते थे कि उनसे संपर्क बनाए रखा जाए, विशेषकर श्रीमती पाइपर का, जो कि सर ओलिवर लॉज के कहने से मीडियम—माध्यम बनी थी। वह उसका विशेष रूप से ऋणी था, जिसने अपना शरीर सर जेम्स को उपयोग करने के लिए दिया था। वह उस माध्यम को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचाना चाहता था।

मरणोत्तर जीवन एक सच्चाई है, किंतु यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि मृतात्माओं का वाहक या माध्यम बनना जीवन को किसी बड़े जोखिम में डालने से किसी भी प्रकार से कम नहीं है। इस संबंध में स्वामी शिवानंद जी का अपनी सुप्रसिद्ध कृति 'मरणोत्तर जीवन' में कहना है कि किसी भी व्यक्ति को अपने को माध्यम नहीं बनने देना चाहिए। माध्यम बनने वाला व्यक्ति अपने आत्मसंयम की शक्ति को खो बैठता है। इन माध्यमों की प्राणशक्ति, जीवनीशक्ति तथा बौद्धिक शक्ति का उपयोग वे प्रेतात्माएँ करती हैं, जिनके वश में ये माध्यम होते हैं। इन माध्यमों या व्यक्तियों को कुछ भी उच्चस्तरीय ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है। ❑

दुनियादारी की बातों से परेशान होकर कुछ युवकों के मन में क्षणिक वैराग्य जागा और वे घर छोड़ जंगल को निकल चले। चलते-चलते बातों का क्रम चल पड़ा। एक ने पूछा—''अच्छा भाइयो! ये बताइए कि जब हम तपस्या करेंगे और उससे प्रसन्न होकर भगवान आएँगे तो हम क्या वरदान माँगेंगे ?'' दूसरा बोला—''मैं तो भरपेट अन्न माँगूँगा। भूखे पेट कौन जीवित रह पाएगा।'' तीसरा बोला—''मैं तो अपार बल माँगूँगा। शक्ति हो तो कोई भी राह खुल जाती है।'' चौथा बोला—''मैं तो बुद्धि माँगूँगा, सुना है बुद्धि—धनबल, जनबल से भी श्रेष्ठ है।'' पाँचवाँ बोला—''मैं तो स्वर्ग माँगूँगा। वहाँ तो सब वैसे ही उपलब्ध है।''

उनकी बातें सुन रहा एक साधु बोला—''मूर्खो! तुमसे न तपस्या होगी और न तुम्हें कोई वरदान मिलेगा। तपस्या के लिए मनोबल और तितिक्षा की आवश्यकता होती है और यदि तुममें वो होता तो तुम आज संसार से घबराकर भागने के बजाय अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए आगे बढ़ते। मेरी मानो तो वापस लौटकर प्राणिमात्र की सेवा में लग जाओ, वही सच्ची साधना है।'' युवकों को अपनी भूल का भान हुआ और वे घर वापस लौटकर सेवा धर्म में निरत हो गए।

इतनी आसान नहीं जीवन की उत्पत्ति

सन् 1953 में शिकागो विश्वविद्यालय के एक विद्यार्थी स्टेनले मिलर ने जब एक प्रयोग को संपन्न किया तो उस प्रयोग ने वैज्ञानिक जगत् में बहुत-सी हलचलों को जन्म दिया। प्रयोग दिखने में तो साधारण था, पर एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक या मानवीय जिज्ञासा से संबंध रखता था। वह जिज्ञासा थी—''धरती पर जीवन की उत्पत्ति कैसे हुई।''

स्टेनले ने प्रयोगशाला में दो फ्लास्क लिए—एक के अंदर प्रागैतिहासिक जल जैसा द्रव्य भरा गया तो दूसरे में मीथेन, अमोनिया एवं हाइड्रोजन सल्फाइड जैसी गैसों का मिश्रण था, जो धरती के वायुमंडल का प्रतिनिधित्व करती थीं। कुछ दिनों बाद ही, फ्लास्क के अंदर का पानी एक विचित्र से मिश्रण में बदलने लगा, जिसके भीतर ऑर्गेनिक पदार्थों का सम्मिश्रण विद्यमान था।

अनेक वैज्ञानिकों ने इस प्रयोग को जीवन की उत्पत्ति का प्रयोग कहा। कइयों ने तो यहाँ तक घोषणा कर डाली कि कुछ ही दिनों के बाद इनसान स्वयं ही एक सृष्टि का निर्माण करने में सक्षम होगा और उसे किसी अन्य सहायता की आवश्यकता नहीं, परंतु धीरे-धीरे, जैसे-जैसे इस विषय में वैज्ञानिक समझ और गंभीर होनी प्रारंभ हुई, वैसे-वैसे यह स्पष्ट होता चला गया कि ऐसा कर पाना तो दूर की बात है, ऐसा सोच पाना भी संभव नहीं है।

उदाहरण के तौर पर, यह सभी को पता है कि जीवन के निर्माण के लिए या यों कहें कि एक मानवीय शरीर के निर्माण के लिए अमीनो अम्लों की आवश्यकता होगी। एक अमीनो अम्ल या एसिड में अनेक प्रोटीन बनाए जा सकते हैं, जिन्हें मानवीय अस्तित्व की ईंटें या बिल्डिंग ब्लॉक कहा जा सकता है।

यहाँ पर समीकरण रोचक हो जाते हैं; क्योंकि मनुष्य शरीर में करोड़ों की संख्या में प्रोटीन की जरूरत पड़ती है और एक प्रोटीन को बनाने के लिए अमीनो एसिड को एक निश्चित क्रम में लगाना जरूरी होता है। ठीक वैसे ही, जैसे एक शब्द का गठन करने में अक्षरों को एक निर्धारित क्रम में लगाना जरूरी होता है।

यदि हमें इसी तरह से हमारे शरीर के एक महत्त्वपूर्ण प्रोटीन 'कॉलेजन' का निर्माण करना हो तो उसके लिए 1055 अमीनो एसिड को एक निश्चित क्रम में लगाने की आवश्यकता होगी। यदि इन सारे अमीनो एसिड के द्वारा संभावित सारे क्रमों के विषय में सोचा जाए तो करीब उतने क्रम संभव हैं, जितने एक के बाद 260 शून्य लगाने पर निकलकर आते हैं। प्रश्न उठता है कि अमीनो एसिड को यह पता कैसे चलता है कि हमें इसी निश्चित क्रम में लगना है ?

केवलं ग्रहनक्षत्रं न करोति शुभाशुभम्।
सर्वमात्मकृतं कर्म लोकवादो ग्रहा इति॥

—महाभारत, अनु. पर्व, /145

अर्थात केवल ग्रह-नक्षत्र किसी को शुभ या अशुभ फल नहीं देते। उसके अपने किए गए कर्मों को ही लोग गृह-नक्षत्रों का नाम दे देते हैं।

ऐसा भी नहीं है कि एक निश्चित क्रम में लगाने मात्र से निर्माण हो जाएगा। उनका क्रम में लगना, फिर दूसरे प्रोटोन के साथ समीकरण में बैठना और फिर एक निश्चित आकार को प्राप्त करना, जिसे प्राप्त किए बिना वह निर्माण संभव नहीं है—यह सब कुछ किसी चमत्कार से कम नहीं। फिर प्रोटीन तो निष्क्रिय तत्त्व हैं, वे दूसरे प्रोटीन का निर्माण भी नहीं कर सकते। प्रोटीन का उपयोग बिना डी.एन.ए. के संभव नहीं है और डी.एन.ए. बिना प्रोटीन के किसी उपयोग के नहीं हैं। क्या यह किसी दैवी समीकरण जैसा नहीं लगता कि डी.एन.ए. एवं प्रोटीन ने जीवन को जन्म देने के लिए, एकदूसरे को खोज लिया हो। वैज्ञानिक भी आज इस सत्य को अनुभव करने लगे हैं कि मानवीय जीवन की उत्पत्ति इतनी सरल नहीं है, जितनी दिखाई पड़ती है। ❑

आत्मबोध की प्राप्ति में है मानव जीवन की गरिमा

शहर से दूर एक एकांत व निर्जन स्थान में एक भिखारी एक छोटी-सी कुटिया में रहता था। अस्वस्थ रहने के कारण वह भीख माँगने बहुत दूर नहीं जा पाता था। उस रास्ते से आते-जाते लोग उसे जो कुछ दे देते, उसी से उसका गुजारा चलता। एक दिन अकस्मात् उसकी मृत्यु हो गई। कुछ दिनों के बाद भूगर्भ वैज्ञानिकों का एक दल उस मार्ग से होकर जा रहा था कि तभी उन सबकी नजर एक स्थान पर जाकर टिकी।

वैज्ञानिकों ने अपने कुछ विशेष उपकरणों के माध्यम से उस स्थान की जाँच की। उन्हें यह ज्ञात हो गया कि इस स्थान पर धरती के अंदर कुछ बेशकीमती रत्न आदि हो सकते हैं। वैज्ञानिकों के कहने पर उस स्थान की खुदाई की जाने लगी। खुदाई के क्रम में अचानक वहाँ सोने की खान निकल आई। देखते-देखते वहाँ हजारों लोगों की भीड़ जमा हो गई।

यह जानकर सभी लोग हैरान थे कि इस स्थान के इतने पास होते हुए भी हम सभी इस सोने की खान से अनभिज्ञ रहे, अनजान रहे। काश! इसकी जानकारी हम लोगों को पहले से होती तो हम सब मालामाल हो गए होते। हम सब कितने ऐशोआराम की जिंदगी जी रहे होते। दरअसल यह वही स्थान था, जहाँ कभी एक छोटी- सी कुटिया में वह भिखारी रहता था; जिसकी मृत्यु अभी कुछ ही दिन पूर्व हुई थी। उसकी कुटिया के ठीक नीचे ही वह सोने का विशाल खजाना निकला था।

सोने के विशाल खजाने के ऊपर वह एक छोटी-सी कुटिया में रहता रहा। वह जीवन भर भीख माँगता रहा। गई-गुजरी जिंदगी जीता रहा और कष्ट-क्लेश एवं कठिनाइयों में रहा। उसका जीवन दु:खों से भरा रहा और वह जीवन भर अभावों में रहकर रोता-बिलखता और तड़पता रहा। काश! यदि उसे उस खजाने के बारे में पता चल गया होता तो उसका जीवन अभावों में नहीं, आनंद में बीता होता। उसका जीवन दु:ख से नहीं, सुख से भरा होता, पर अब उस सोने की खान का उसके लिए क्या मोल था?

जो इस दुनिया में रहा ही नहीं और जो इस दुनिया में रहते हुए उस खदान को न जान सका, न देख सका। वास्तव में यह स्थिति हर उस व्यक्ति की है, जो अपने ही अंदर स्थित आत्मा व परमात्मा के रूप में आनंद के विशाल खजाने से अनजान है; क्योंकि इस अनमोल खजाने से अनजान रहते हुए वह पूरा जीवन कष्ट-क्लेश व कठिनाइयों में ही बिताता है।

अपने भीतर आनंद के अमृत स्रोत के होते हुए भी सुख की चाह में जीवन भर विषय-वासनाओं व भोग पदार्थों की याचना मनुष्य करता फिरता है। वह तृप्त तो होना चाहता है, आनंदित तो होना चाहता है, पर आत्मा को जाने बिना, परमात्मा को पाए बिना। वह जीवन भर यश-अपयश, मान-अपमान, सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद व जय-पराजय आदि द्वंद्वों के बीच रोता-बिलखता रहता है, पर उन द्वंद्वों से मुक्त होकर आनंद से भरा हुआ जीवन जीने का कोई प्रयास-पुरुषार्थ भी वह नहीं करता। वह भौतिक सुख के पीछे भागते-भागते अपनी मानसिक शांति भी खो देता है।

यह जानते हुए भी कि मृत्यु के बाद यह नश्वर संसार और भौतिक वस्तुएँ यहीं छूट जाएँगे, फिर भी वह इनका मोह नहीं छोड़ पाता। यही कारण है कि वह अन्य जीव-जंतुओं की भाँति प्रारब्धजन्य कर्मों का भोग करते हुए पुनर्जन्म को प्राप्त होता है। वह जीवन-मरण के चक्र में नाचता फिरता है। वह उनसे मुक्त नहीं हो पाता। इन सबका एक ही कारण है और वह है—अज्ञान। अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान न होना ही अज्ञान है। मैं शरीर नहीं, आत्मा हूँ। शरीर तो आत्मा का आवरण मात्र है, वस्त्र मात्र है। आत्मा परमात्मा का ही अंश है। अस्तु परमात्मा की भाँति आत्मा भी सत्-चित्-आनंदस्वरूप है।

इसकी अनुभूति होना ही ज्ञान है, आत्मज्ञान है, ब्रह्मज्ञान है। यही बोध है, यही आत्मबोध है। यह बोध ही वह दृष्टि है, जिससे हम नित्य-अनित्य, सत्य-असत्य में भेद कर पाते हैं। यह बोध-दृष्टि प्राप्त होते ही व्यक्ति के जीवन जीने का तरीका बदल जाता है। वह आत्मदर्शन की ओर अभिमुख

होने लगता है। वह आनंद के वास्तविक स्रोत के पास पहुँचकर वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है, जिसके लिए वह जीवनपर्यंत भटकता फिरता है।

वास्तव में इसी में जीवन की सार्थकता भी है और मानव जीवन की गरिमा भी। आत्मज्ञान, आत्मबोध हो जाने के बाद सांसारिक जीवन के प्रति मोह समाप्त होने लगता है। व्यक्ति आत्मोन्मुख, ईश्वरोन्मुख होने लगता है। मन के ईश्वर की ओर उन्मुख होते ही हम अपने ही भीतर स्थित आनंद के परम स्रोत तक पहुँच जाते हैं और वहाँ पहुँचते ही, उसे पाते ही, व्यक्ति परम शांति, परम आनंद को प्राप्त कर लेता है।

वह उसी में स्थित हो जाता है, पर आत्मबोध, आत्मज्ञान के लिए हमें एक ऐसे अध्यात्मविद्, ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मविद्या के विशेषज्ञ वैज्ञानिक के मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, जिसे हम गुरु कहते हैं। गुरु के बिना हम यह जान ही नहीं पाते कि मैं कौन हूँ? किसका हूँ? मेरे जीवन का परम लक्ष्य क्या है? ये प्रश्न ऐसे हैं जिनको उपेक्षित, बिना हल किए छोड़ देने की लापरवाही बहुत महँगी पड़ती है।

देवदुर्लभ मानव जीवन, कीड़े-मकोड़े की तरह जीवन जीते हुए समाप्त हो जाता है। पूरा जीवन कष्ट-कठिनाइयों में बीत जाता है। इसके फलस्वरूप जीवन का सारा आनंद ही चला जाता है। अस्तु इस जीवन को आनंद से भर लेने के लिए, आत्मा व परमात्मा को पा लेने के लिए इन मूल प्रश्नों के उत्तर तक पहुँचना आवश्यक है और इन प्रश्नों के उतर तक पहुँचने में गुरु का मार्गदर्शन भी आवश्यक है।

परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार आत्मबोध, आत्मोत्थान, आत्मसाक्षात्कार जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। मनुष्य के लिए इससे बड़ी उपलब्धि कोई दूसरी नहीं हो सकती। आत्मबोध होने के बाद ही व्यक्ति दिव्य जीवन जीता है। वह पेट, परिवार व प्रजनन तक सीमित रहने वाले जीवन की जगह आनंद से ओत-प्रोत जीवन जीने लगता है। वह देवताओं व महामानवों सरीखे जीवन जीने लगता है।

व्यक्ति जब स्वयं को ईश्वर का अंश समझने लगता है, स्वयं को आत्मा के रूप में अनुभव करने लगता है तो उसकी पिछली मान्यताओं, आकांक्षाओं, योजनाओं, गतिविधियों व जीवनशैली में, जीवन-दृष्टि में आमूलचूल परिवर्तन होने लगता है। आत्मबोध वह दर्शन है, वह दृष्टि है; जिसे प्राप्त करते ही व्यक्ति का दृष्टिकोण ही नहीं, वरन क्रियाकलाप भी बदल जाते हैं।

इस परिवर्तन को ही आत्मिक कायाकल्प कहते हैं। यह बोध जिस समय, जिस पल, जिस क्षण व्यक्ति के अंदर घटित हो जाता है; उस पल से ही उसका जीवन सदा-सदा के लिए शांति, संतोष, उल्लास, उत्साह व आनंद से भर जाता है। उसके अंदर करुणा, प्रेम, सेवा, संवेदना आदि के रूप में देवत्व अवतरित हो जाता है और उसे अपने अंदर और बाहर स्वर्ग-ही-स्वर्ग नजर आने लगता है।

आत्मिक आनंद के कारण वह पल-पल आत्मविभोर होता रहता है। उसका जीवन सचमुच स्वर्ग-सा सुंदर हो जाता है। वह मान-अपमान, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद आदि द्वंद्वों से ऊपर उठकर सदैव आनंदित रहता है, प्रफुल्लित रहता है। वह कठिनाइयों के बीच रहकर भी मुस्कराता रहता है। उसका बढ़ा-चढ़ा आत्मबल उसमें हर पल आशा का संचार करता रहता है। वह सर्वत्र विजयी होता है।

अस्तु हमें हर पल आत्मबोध प्राप्त करने के लिए सचेष्ट रहना चाहिए और यदि हम सचमुच इस जीवन में आत्मबोध प्राप्त करना चाहते हैं, अपने जीवन को आनंद से भर लेना चाहते हैं तो हमें अपने आपसे यह प्रश्न अवश्य ही पूछते रहना चाहिए कि मैं कौन हूँ? मेरी भौतिक सत्ता का प्रयोजन क्या है? पृथ्वी पर मेरी उपस्थिति का क्या प्रयोजन है? सत्य तो यह है कि लोगों की बहुत बड़ी संख्या अपने आप से यह प्रश्न एक बार भी पूछे बिना जीवन बिता देती है।

केवल कुछ गिने-चुने लोग ही अपने आप से यह प्रश्न पूछते हैं और उनमें से भी बहुत कम होते हैं, जो इसका उत्तर पाने के लिए सच्चे मन से प्रयास करते हैं। इस संबंध में श्रीमाँ ने कितना सुंदर कहा है—अपने आप से यह पूछना कि आखिर मैं यहाँ क्यों हूँ? मेरे जीवन का प्रयोजन क्या है? यह कितने लोग कर पाते हैं? वास्तव में ऐसे प्रश्न कुछ लोगों के मन में तभी आते हैं, जब वे किसी मुसीबत का सामना करते हैं, जब वे अपने किसी प्रिय को मरते देखते हैं, जब वे किसी विशेष दुःखद या कठिन परिस्थिति में होते हैं।

अगर वे काफी बुद्धिमान हों तो जरा मुड़कर अपने आप से पूछते हैं, यह क्या मुसीबत है, जिससे हम गुजर रहे हैं, इसका उपयोग और प्रयोजन क्या है? और केवल तभी जब तुम यह जान लो कि तुम्हारे अंदर दिव्य आत्मा है और अंततः तुम्हें इस दिव्य आत्मा को खोजना और पाना है।

यह स्थिति बहुत बाद में आती है, लेकिन फिर भी सब चीजों के बावजूद भौतिक शरीर के जन्म के साथ ही उसके अंतस् की गहराइयों में चैत्य सत्ता की उपस्थिति होती है, जो उसे परिपूर्णता की ओर धकेलती है, लेकिन इस चैत्य सत्ता को कौन जानता और पहचानता है? यह चीज भी विशेष परिस्थितियों में आती है और दुर्भाग्यवश अधिकतर कष्टदायक परिस्थितियों में, अन्यथा आदमी बिना सोचे-समझे जीवन जीता चला जाता है।

तुम्हारी सत्ता की गहराइयों में चैत्य सत्ता होती है, जो चेतना को जगाने की कोशिश करती है और ऐक्य को पुन: स्थापित करने का प्रयास करती है, लेकिन व्यक्ति को इसके बारे में कुछ भी पता नहीं होता और जब तक उसे अपनी चैत्य सत्ता का आभास नहीं होता, तब तक वह नियति के भार तले अपना जीवन जीता रहता है। तुम्हें ऐसा प्रतीत होता है, तुम्हें ऐसे ही जीना है और इससे ऊपर होने अथवा मुक्त होने के लिए तुम कुछ नहीं कर सकते।

तुम्हें लगता है कि तुम एक ऐसे जीवन के भार के नीचे हो, जो तुम्हें दबा देता है और तुम्हें ऊपर उठाने की जगह नीचे जमीन पर रेंगने के लिए बाध्य करता है। तुम्हें सभी धागों को दिखाने, सभी मार्गदर्शक धागों को दिखाने की जगह रेंगने को बाध्य करता है, पर यह तुम्हारे जीवन का सामान्य तरीका होता है। तुम्हें इस स्थिति से, इस अर्द्धचेतना में से उछल पड़ना चाहिए। तुम्हें इस सामान्य स्थिति से बाहर निकलकर असामान्य स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। तुम्हें अंतत: उस दिव्य आत्मा को खोजना और पाना है, जो कि तुम्हारे अंदर ही है।

तुम स्वयं के प्रयास से या किसी समर्थ मार्गदर्शक के सहयोग व मार्गदर्शन से ऐसा अवश्य ही कर सकते हो। वहीं आत्मज्ञान, आत्मबोध के विषय में आचार्य शंकर अपनी पुस्तक आत्मबोध (2) में कहते हैं—

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो
हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम्।
पाकस्य वह्नि वज्ज्ञानं
विना मोक्षो न सिद्धयति॥

अर्थात जो-जो जप, तप, कर्म, योगादि मोक्ष के साधन हैं, उनमें मोक्ष का मुख्य साधन रूप बोध अर्थात आत्मज्ञान ही है।

जैसे पाक (रसोई) बनाने में बरतन, लकड़ी, जल इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है, किंतु पाक में मुख्य कारण अग्नि ही है और जो अन्य कारण हैं, वे सहकारी कारण हैं अतएव ज्ञान के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती अर्थात ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती और अन्य जो तप आदि सहकारी कारण हैं, कर्म हैं वे केवल अंत:करण की शुद्धि के लिए हैं अर्थात तप से अंत:करण का कल्मष दूर होता है और विद्या (ज्ञान) से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

वस्तुत: जैसे अखंड सूर्यमंडल जब मेघमाला अर्थात बादलों के समूह से आच्छादित हो जाता है, तब उसकी ज्योति जगह-जगह बादलों के छिद्रों में से प्रकाशित होती है, पर मेघमाला (बादलों) के हटते ही सूर्यमंडल का पूर्ण प्रकाश होता है। उसी प्रकार जीव जब तक अविद्या, अज्ञान से घिरा रहता है, तब तक उसे अखंड आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं होता, उसे अपने वास्तविक सत्-चित्-आनंदस्वरूप का ज्ञान नहीं होता, पर अविद्या, अज्ञान के दूर होते ही वह स्वयं ही प्रकाशवान ब्रह्मरूप प्रतीत होने लगता है।

तब उसकी जीवन-दृष्टि, जीवनशैली बदल जाती है। उसका जीवन दर्शन ही पूर्णत: बदल जाता है। वह देहपरायण नहीं, बल्कि आत्मपरायण जीवन जीने लगता है। वह भौतिक जगत में रहते हुए भी हर पल, अभौतिक, आत्मिक, आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति करने लगता है।

यह रूपांतरण, यह बदलाव ही व्यक्ति में आया वास्तविक रूपांतरण है, वास्तविक बदलाव है। यह रूपांतरण, यह बदलाव हमारी सोच, हमारे दृष्टिकोण, हमारी मान्यताओं को बदलकर रख देता है। यह रूपांतरण, यह बदलाव हमारे जीवन को आनंद से भर देता है, खुशियों से भर देता है।

अस्तु आवश्यकता है—अपने भीतर वास्तविक रूपांतरण की, वास्तविक परिवर्तन की, वास्तविक बदलाव की और यह निस्संदेह संभव है आत्मज्ञान से, आत्मबोध से; जिसके लिए हमें सच्चे मन से प्रयास-पुरुषार्थ करना ही चाहिए। इसी में मानव जीवन की गरिमा भी है और सार्थकता भी। ❑

नर और नारी एक समान

नारी स्रष्टा की एक अनमोल कृति है, श्रेष्ठतम रचना है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में कहें तो ईश्वर की प्रथम अभिव्यक्ति ही वह हाथ है, जो पालना झुलाता है। संसार में चेतना के आविर्भाव का श्रेय नारी को ही जाता है। वह अपने वात्सल्य से, प्रेम से, साधना से, सेवा से, संवेदना से पूरे परिवार, समाज व राष्ट्र को सींचती है। नारी की महत्ता को ऋग्वेद (4.14.30) ने कुछ इस प्रकार प्रकाशित किया है—'उषा के समान प्रकाशवती, हे राष्ट्र की पूजायोग्य नारी! तुम परिवार और राष्ट्र में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की अरुण कांतिओं को छिटकती हुई आओ।' उसी नारी को लेकर 'मनुस्मृति' का उद्घोष है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया॥

—मनुस्मृति, 3.56

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्चत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥

—मनुस्मृति, 3.57

अर्थात जहाँ नारियों की पूजा होती है, सम्मान-सत्कार होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ नारियों की पूजा नहीं होती है, उनका सम्मान नहीं होता है, वहाँ किए गए समस्त अच्छे कर्म निष्फल हो जाते हैं। जिस कुल में स्त्रियाँ कष्ट भोगती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जहाँ स्त्रियाँ प्रसन्न रहती हैं, वह कुल सदैव फलता-फूलता और समृद्ध रहता है।

नारी की महत्ता से भारतीय वाङ्मय भरे पड़े हैं। एक पुरुष अपने पिता के कुल का प्रतिनिधित्व करता है तो वहीं एक नारी अपने पिता व पति दोनों के कुलों का प्रतिनिधित्व करती है। उसके ऊपर यह दोहरी जिम्मेदारी होती है। वह अपने श्रेष्ठ आचरण व आदर्श से दोनों कुलों को गौरवान्वित करती है।

भगवान श्रीराम के वनवास जाने पर सीता भी राजसी सुख-वैभव को त्यागकर अपने पति के साथ वन जाने को तत्पर हो जाती हैं। वे राजसी वेश की जगह तपस्विनी का वेश धारण कर लेती हैं। श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं—

तापस बेष जनक सिय देखी।
भयउ पेमु परितोषु बिसेषी॥
पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ।
सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ॥

अर्थात सीता जी को तपस्विनी वेश में देखकर राजा जनक को विशेष प्रेम और संतोष हुआ। उन्होंने कहा कि बेटी! तुमने अपने आचरण से दोनों कुल पवित्र कर दिए। तेरे निर्मल यश से सारा जगत् उज्ज्वल हो रहा है, ऐसा सब कोई कहते हैं।

यह भारत की नारी का सर्वोच्च आदर्श है, जो हमें देखने को मिलता है। राजपाट हो, रणभूमि हो या फिर साधना का समर हो—हर जगह नारियों ने अपनी श्रेष्ठता, क्षमता व प्रतिभा का परचम फहराया है। वैदिककाल में नारियाँ वेद पढ़ती भी थीं और पढ़ाती भी थीं। मैत्रेयी, गार्गी, अपाला, घोषा आदि ऋषिकाएँ इसका उदाहरण हैं। इतना ही नहीं आश्रमों, आरण्यकों, गुरुकुलों आदि के सफल संचालन में ऋषियों के साथ-साथ ऋषिकाओं एवं ऋषि-पत्नियों का भी उतना ही योगदान होता था।

वर्तमान समय में भी आध्यात्मिक आश्रमों को देखें तो श्रीरामकृष्ण परमहंस के साथ माँ शारदामणि, महर्षि अरविंद के साथ श्रीमाँ, परमपूज्य गुरुदेव के साथ परम वंदनीया माताजी, ऋषिकाओं व ऋषिपत्नियों का उन आश्रमों के द्वारा संचालित आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों को विस्तार देने में अविस्मरणीय योगदान रहा है। भारत के स्वाधीनता आंदोलन में कस्तूरबा बाई सदैव महात्मा गांधी की छाया बनकर पग-पग पर उनका साथ देती रहीं।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में रानी लक्ष्मीबाई जैसी अगणित वीरांगनाओं की वीरता के बारे में कौन नहीं जानता? क्रांतिकारियों के बीच दुर्गा भाभी के नाम से मशहूर दुर्गा देवी के योगदान को भला कैसे भुलाया जा सकता है? ये ही वे

साहसी महिला थीं, जिनका घर भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु जैसे क्रांतिकारियों के लिए आश्रयस्थली था। वे सारे क्रांतिकारी अँगरेज सिपाहियों व अधिकारियों की नजर से बचे रहने के लिए इन्हीं दुर्गा देवी के घर में शरण व भोजन पाते थे।

जो पैसे उनके पति उनके बुरे समय के लिए छोड़ गए थे, वह भी उन्होंने इन क्रांतिकारियों को दे दिए थे। अपने तीन साल के बेटे को साथ लेकर इस साहसी महिला ने भगतसिंह और राजगुरु को अपने परिवार का नौकर बताकर अँगरेज सिपाहियों की नजरों से बचाया था और ये तीनों लखनऊ के लिए ट्रेन में बैठ गए थे। ऐसी असंख्य नारियों ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को गति प्रदान की थी।

भारत की बेटी सती सावित्री ने तो अपने तप बल से मृत्यु के देवता यम की आँखों में आँखें डालकर उन्हें अपने पति सत्यवान के प्राण को वापस करने को विवश कर दिया था। वस्तुतः नारी कोई अबला नहीं, बल्कि सबला है। नारी उतनी ही साहसी और समर्थ है, जितना कि पुरुष। नारियों ने अवसर मिलने पर समय-समय पर अपने अदम्य साहस व शक्ति का परिचय बखूबी दिया है। वस्तुतः नर और नारी मनुष्य के ये दो रूप हैं।

मनुष्य ईश्वर का अंश है अस्तु नर की तरह नारी भी उतनी ही सामर्थ्यवान है, जितना की पुरुष। आत्मा न तो नर है न ही नारी। नर और नारी का शरीर तो आत्मा का आवरण मात्र है। वस्तुतः नर और नारी आत्मिक तल पर एक ही हैं। इसलिए कहा गया है नर और नारी एक समान। नर और नारी में कोई भेद नहीं। इस संबंध में मनुस्मृति ने क्या खूब कहा है—

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्तां स विराजमत्सृजप्रभुः॥

अर्थात हिरण्यगर्भ ने अपने शरीर के दो भाग किए। आधे से पुरुष और आधे से स्त्री का निर्माण हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों में तत्त्वतः कोई भेद नहीं। हाँ! नर और नारी में शारीरिक संरचना में अंतर तो है, पर त्याग, तपस्या, साहस, शौर्य, मनोबल, आत्मबल, पुरुषार्थ, प्रतिभा आदि के स्तर पर कोई अंतर नहीं। नारी शक्ति है। शक्ति के बिना शिव भी शव समान हैं।

शिव का अर्द्धनारीश्वर रूप भी इसी बात का द्योतक है कि नर और नारी में कोई भेद नहीं, बल्कि तत्त्वतः दोनों एक ही हैं। नर और नारी की सम्मिलित शक्ति से ही परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व का निर्माण होता है। नर और नारी की सम्मिलित शक्ति से ही परिवार, समाज व राष्ट्र सशक्त व समृद्ध होता है। नारी शक्ति की उपेक्षा कर, उसे कमजोर कर, उसे विकास के अवसर से दूर कर कोई भी परिवार, समाज व राष्ट्र सशक्त व समर्थ नहीं हो सकता।

नारी पुरुषों की प्रतिद्वंद्वी नहीं, बल्कि पूरक है। दुर्भाग्यवश नारियों को लेकर समय-समय पर समाज में उपजे दकियानूसी विचारों व मूढ़-मान्यताओं के कारण नारियों के मनोबल, आत्मबल को कमजोर करने का कुत्सित प्रयास किया जाता रहा। नारियों में पुरुषों के मुकाबले बुद्धि, मेधा, प्रतिभा, पुरुषार्थ, साहस, क्षमता, सामर्थ्य आदि के कमतर होने व उनके अबला होने जैसी हीन भावनाएँ भरी जाती रहीं।

उनकी शक्ति, सामर्थ्य व क्षमता को कमतर आँकने की भूलें की जाती रहीं और इसका भारी खामियाजा पूरे समाज, राष्ट्र व विश्व समुदाय को भुगतना पड़ा है। अवसर न मिलने पर तो कोई भी जेल में बंद कैदियों की तरह गई-गुजरी अवस्था में देखा जा सकता है, पर यदि उसे स्वतंत्र चलने और प्रतिभा विकसित करने के अवसर मिले, समान अवसर मिले तो नारी भी हर दृष्टि से समर्थ हो सकती है, सशक्त हो सकती है।

मध्ययुग में नारी को केवल घर की संकीर्ण सीमाओं में आबद्ध कर दिया गया। तथाकथित आदर्शों के नाम पर उनकी स्वाधीनता छीन ली गई। मध्ययुग के बाद भी सदियों तक नारी को बहुत-सी सामाजिक कुरीतियों, मूढ़-मान्यताओं व पाखंडों का सामना करना पड़ा है। पुत्र ही पिता के वंश को आगे बढ़ाने वाला असली उत्तराधिकारी है, पुत्र के द्वारा मुखाग्नि देने पर ही पिता को मुक्ति प्राप्त होती है। पुत्री परायी संपति है आदि शास्त्रविरोधी मूढ़-मान्यताओं ने नारियों की स्वाधीनता का न सिर्फ हरण किया, बल्कि उन्हें अपनी क्षमता, प्रतिभा विकसित करने के अवसर से भी वंचित कराया।

विभिन्न युगों में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद व परमपूज्य गुरुदेव जैसे असंख्य महान विचारकों व समाज सुधारकों ने स्त्री को लेकर मूढ़-मान्यताओं, कुरीतियों व पाखंडों से स्त्री को होने वाली हानियों को अनुभव किया तो उन्होंने अपने लेखों, व्याख्यानों, सामाजिक-सांस्कृतिक

आंदोलनों व नारी जाग्रति, नारी जागरण, नारी सशक्तिकरण हेतु चलाए गए विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से नारियों के सर्वांगीण विकास हेतु अमूल्य योगदान भी दिया। परिणामत: नारियों में जाग्रति आने लगी और नारियों ने अपनी मेधा, प्रतिभा व पुरुषार्थ के बल पर समाज में उच्च स्थान प्राप्त किया व मानव समाज के मार्गदर्शन व प्रगति में प्रशंसनीय कार्य करती रहीं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि आज भी लैंगिक भेदभाव, बेटे-बेटी में फरक, बहू-बेटी में फरक, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर होने वाले अपराध, यौन शोषण, असुरक्षा, अशिक्षा, बाल-विवाह, दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या जैसी समस्याएँ परिवार व समाज में व्याप्त हैं, जिन्हें परिवार, समाज व राष्ट्र के व्यापक हित में दूर किए जाने की अविलंब आवश्यकता है।

नारी सशक्तिकरण को लेकर स्वामी विवेकानंद ने ठीक ही कहा है कि मातृभूमि एवं नारी जाति के प्रति कर्त्तव्य भाव, सम्मान भाव एवं नारी जाति के स्वयं जागरूक होने से ही हमारे देश का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। जिस देश में, जिस जाति में स्त्रियों का सम्मान नहीं उसकी शक्ति-सामर्थ्य व प्रतिभा विकसित करने के प्रयास-पुरुषार्थ व अवसर नहीं—वह देश, वह जाति कभी बड़ी नहीं हो सकती, विकसित नहीं हो सकती।

महात्मा गांधी भी महिलाओं के विषय में बड़ा ही सकारात्मक दृष्टिकोण रखते थे। वे महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले अधिक सुदृढ़ और सहृदय मानते थे। वे नारी को अबला कहने के भी सख्त खिलाफ थे। उनकी यह स्पष्ट धारणा थी कि महिलाओं को अबला कहना, महिलाओं की आंतरिक शक्ति को दुत्कारना है।

यदि हम इतिहास पर नजर डालें तो हमें उनकी वीरता की कई मिसालें मिलेंगी। महिलाएँ अपनी शक्ति-सामर्थ्य, प्रतिभा-पुरुषार्थ व आध्यात्मिक अनुभूति के बल पर देश का रूप बदल सकती हैं। वहीं नारी जागरण, नारी सशक्तिकरण के लिए भागीरथ प्रयास-पुरुषार्थ करने वाले परमपूज्य गुरुदेव का स्पष्ट मत है कि विश्व की आधी आबादी नारी है। आधी आबादी व बच्चे नारी के ही साथ हैं। यदि उनकी स्थिति गई-गुजरी रही तो समाज अपंग जैसी स्थिति में रह जाएगा।

समाज को अपंगता की स्थिति से बचाने हेतु नारी जागरण, नारी सशक्तिकरण आवश्यक है। नारी जागरण का तात्पर्य यही है कि नारी अपनी शक्ति को पहचाने। अपनी क्षमता व दिव्यता को पहचान कर उसे पाने व बढ़ाने हेतु प्रयासरत हो एवं उसमें पुन: प्रतिष्ठित हो। नारी की क्षमताओं से, संवेदना से परिवार, समाज व राष्ट्र लाभान्वित हो।

नारी जागरण, नारी सशक्तिकरण के चार आधार हैं—शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलंबन और संस्कार। नारी शिक्षित हो साथ ही संस्कारवान भी। नारी स्वस्थ हो तथा स्वावलंबी भी। इसके साथ ही वह दूसरों को भी शिक्षित, स्वस्थ, स्वावलंबी व संस्कारी बनाने हेतु सक्षम बने। प्रबुद्ध नारियाँ आगे आएँ और सृजन का शंख बजाएँ।

संत विरजानंद अपनी कुटिया में बैठे थे। द्वार खटखटाने की आवाज हुई। विरजानंद जी ने पूछा—"कौन है बाहर?" उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। दूसरी-तीसरी बार पूछने पर भी जब कोई उत्तर नहीं मिला तो विरजानंद जी सहारा लेकर बाहर निकले। उन्हें पता चला कि बाहर मूलशंकर खड़े थे।

उन्होंने उनसे पूछा—"क्योंरे! पूछने पर बोला क्यों नहीं कि तू था।" मूलशंकर ने उत्तर दिया—"जब यह पता ही नहीं है कि मैं कौन हूँ तो क्या उत्तर देता?" संत विरजानंद प्यार से उनकी पीठ थप-थपाकर बोले—"आ जा बेटा! कब से तेरा ही इंतजार कर रहा था।"

दिव्य दृष्टिसंपन्न गुरु और प्रखर प्रतिभासंपन्न शिष्य का मिलन हुआ। यही मूलशंकर आगे चलकर स्वामी दयानंद के नाम से प्रख्यात हुए।

पिछड़ी हुई स्थिति में पड़ी नारी को आगे बढ़ाने में परिवार के पुरुष की भी महती भूमिका है। उन्हीं की सेवा-शुश्रूषा में नारी का अधिकांश समय बीतता है। दूसरी ओर उसके समर्थ होने की स्थिति को पुरुष अपने लिए खतरा नहीं, वरन गर्व का विषय समझें एवं उसके प्रति अपनी सद्भावना का परिचय देते हुए नारी को समुन्नत बनाने का प्रयत्न करें।

यह उच्च कोटि का परमार्थ भी है और सद्भाव भरा प्रायश्चित भी। परमार्थ इसलिए कि नारी जैसी सृजन शक्ति को समर्थ बनाना समाज के सिंचन-पोषण हेतु किया जाने वाला ही कर्म है और प्रायश्चित इसलिए कि पुरुष की अहंमन्यता और संकीर्णता के कारण ही नारी विकास के अवसर से वंचित होकर पिछड़ी रही है। अस्तु महिलाओं को आगे आने में, उनका सहयोग करें।

घर में बेटे-बेटी को समान रूप से शिक्षित, संस्कारी व स्वावलंबी बनाने का प्रयास-पुरुषार्थ करें। बेटे-बेटी में फरक कैसा? बहू-बेटी में फरक कैसा? निस्संदेह बिना नारियों की तरक्की और सशक्तिकरण के देश की तरक्की संभव नहीं। सशक्तिकरण से तात्पर्य किसी व्यक्ति की उस क्षमता से है, जिससे उसमें वह योग्यता आ जाती है; जिससे वह अपने जीवन से जुड़े सभी निर्णय स्वयं ले सके। नारी सशक्तिकरण में भी हम उसी क्षमता की बात कर रहे हैं, जहाँ महिलाएँ परिवार और समाज के सभी बंधनों से मुक्त होकर अपने निर्णयों की निर्माता स्वयं हों।

नारी सशक्तिकरण को लेकर सरकार भी सचेष्ट है, प्रयासरत है। सरकार के द्वारा नारी सशक्तिकरण के लिए कई सारी योजनाएँ चलाई जा रही हैं। बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ योजना, महिला हेल्पलाइन योजना, उज्ज्वला योजना, लड़कियों की शिक्षा के लिए स्कॉलरशिप योजना, सपोर्ट टू ट्रेनिंग एंड एंप्लॉयमेन्ट प्रोग्राम फॉर वूमेन, महिला शक्ति केंद्र, पंचायतीराज योजनाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण, उत्तराधिकार अधिनियम, ट्रिपल तलाक कानून, घरेलू हिंसा अधिनियम, भ्रूण हत्या संबंधी कानून, दहेजप्रथा विरोधी कानून आदि कई सरकारी योजनाएँ व कार्यक्रम व कानून हैं, जो नारी सशक्तिकरण की दिशा में कारगर साबित हो रही हैं।

सत्य यह भी है कि नारी सशक्तिकरण के पूर्ण लक्ष्य को प्राप्त करना अकेले सरकार की जिम्मेदारी नहीं, बल्कि पूरे समाज की सामूहिक जिम्मेदारी है। नारियों को स्वयं भी अपने अधिकारों व अवसरों के प्रति जागरूक होना होगा। पुरुषों को आगे आकर नारियों को सशक्त करने में अपनी सार्थक व सकारात्मक भूमिका निभानी होगी। इसकी शुरुआत अपने घर-परिवार से ही करनी होगी। विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक व आध्यात्मिक संस्थाओं को आगे आकर इस महान यज्ञ में अपनी आहुतियाँ अर्पित करनी होंगी। शिक्षा नारी सशक्तिकरण का सबसे प्रभावशाली साधन है।

विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी शिक्षण संस्थाओं को आगे आकर शिक्षा, संस्कार व स्वावलंबन के द्वारा लड़कियों को सशक्त करने में अपनी सार्थक भूमिका निभानी ही होगी। आर्थिक तंगी के कारण शिक्षा से वंचित लड़कियों को शिक्षा संस्कार व स्वावलंबन के माध्यम से सशक्त करने हेतु विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों को आगे आना ही चाहिए; क्योंकि यह उनका सामाजिक-राष्ट्रीय कर्त्तव्य भी है और समय की माँग भी।

संसार में समय-समय पर ऐसी कई घटनाएँ घटती हैं जिन्हें सामान्य मानवीय बुद्धि से, दृष्टि से देख पाना संभव नहीं होता, पर जिनके पास दूरदृष्टि है, दिव्यदृष्टि है वे भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं को भी हथेली पर रखे आँवले की तरह देख पाते हैं, देख सकते हैं। इसलिए तो स्वामी विवेकानंद व श्रीअरविंद जैसे युगद्रष्टा ऋषियों ने अपनी दिव्यदृष्टि से भारत के सन् 1947 में आजाद होने की घटना को वर्षों पूर्व ही देख लिया था। महर्षि अरविंद ने वर्तमान शताब्दी को 'मदर सेन्चुरी' कहा है।

युग निर्माण के सूत्रधार व मानव में देवत्व का उदय एवं धरती पर स्वर्ग का अवतरण के उद्घोषक परमपूज्य गुरुदेव ने तो 21वीं सदी उज्ज्वल भविष्य एवं 21 वीं सदी नारी सदी का उद्घोष वर्षों पूर्व ही कर दिया था। उनका यह स्पष्ट उद्घोष है कि इक्कीसवीं सदी महापरिवर्तनों की वेला है। इन दिनों हम सब संक्रमण काल से गुजर रहे हैं एवं सूक्ष्मजगत में नियंता वह विधि-व्यवस्था बनाने में जुटा है, जिसमें सारी धरती का भाग्य नए सिरे से लिखा जा रहा है।

महाकाल का लक्ष्य है सतयुग की वापसी। इस सतयुग में नारी का खोया वर्चस्व उसे नए सिरे से प्राप्त होगा, वह स्वयं उठेगी, अवांछनीयताओं के बंधन से मुक्त होगी एवं ऐसा कुछ कर गुजरने में समर्थ होगी, जिससे उज्ज्वल भविष्य की गतिविधियों को समुचित प्रोत्साहन मिलेगा।

21वीं सदी को महाकाल ने 'नारी सदी' घोषित किया है। अब तक दुनिया में पुरुषप्रधान समाज था। उसकी

व्यवस्था परमसत्ता ने देख ली। अब दायित्व नारियों को सौंपने का मन है।

इसी कारण से पिछले कुछ वर्षों में नारी जाति उन क्षेत्रों में भी बड़ी तेजी से आगे बढ़ी है, जहाँ पुरुषों का एकाधिकार था। अब नारी का अभ्युदय अवश्यंभावी है। यह बिलकुल वैसा ही है, जैसे पतझड़ के बाद वसंत का आगमन होता है। आग उगलती भीषण गरमी के बाद घटाटोप बरसाने वाली वर्षा आ धमकती है और जल-जंगल एक कर देती है और फिर देखते-ही-देखते धरती पर हरियाली की एक नूतन व मखमली चादर बिछ जाती है। इतने बड़े परिवर्तन कर सकना मानवीय प्रयत्नों के लिए भले ही कठिन हो, पर उस नियंता के लिए तो सब कुछ संभव है, जिसने इतनी विचित्रताओं से भरा-पूरा ब्रह्मांड रचकर रख दिया।

आज वैश्विक समाज में जिस प्रकार महिला अधिकारों को लेकर अनुकूल वातावरण विनिर्मित हो रहे हैं, विभिन्न रूपों में नारी जागरण के शंखनाद हो रहे हैं, वर्तमान समय में नारियाँ एक सुयोग्य गृहिणी होने के साथ-साथ जिस प्रकार राजनीति, धर्म, कानून, खेल, उद्योग, व्यापार, न्याय, राजनीति, चिकित्सा, विज्ञान, अंतरिक्ष की यात्रा, शासन-प्रशासन, परिवहन, रक्षा-सुरक्षा आदि विभिन्न क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं।

जिस प्रकार कामयाबी के नित नए कीर्तिमान गढ़ रही हैं, पुरुषों की सहायक व प्रेरक बन रही हैं, अपने अंदर निहित शक्तियों को जानने लगी हैं, जिस प्रकार समाज में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी है वो सचमुच काबिले तारीफ है। आज विभिन्न परीक्षाओं में मेरिटलिस्ट में लड़कियाँ बाजी मार रही हैं। हर क्षेत्र में नारियाँ अपनी मेधा, प्रतिभा व पुरुषार्थ का परचम फहराने लगी हैं। इसे देखते हुए 21वीं सदी उज्ज्वल भविष्य व 21वीं सदी नारी सदी की संभावना सचमुच साकार होती दिख रही है।

नर और नारी में भेद मिटने लगे हैं। साथ ही 'नर और नारी एक समान' की सच्चाई को स्वीकार किया जाने लगा है। यह वास्तव में परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व के लिए शुभ है, मंगल है, कल्याणकारी है। ❑

संत वल्लभाचार्य जिस गाँव में रहते थे, उस गाँव का नाई ईश्वर के प्रति बहुत अश्रद्धा रखता था। जब भी संत उसके द्वार के पास से निकलते तो उन्हें सुनाने के लिए वह जोर-जोर से बोलता—"दुनिया में कोई भगवान नहीं है, नहीं तो यहाँ इतने सारे दुखियारे क्यों होते?" संत हँसते हुए उसकी बात को टाल देते। एक दिन नाई अपनी दुकान पर बाल काट रहा था और एक-दो व्यक्ति बाहर अपनी बारी आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। तभी संत वल्लभाचार्य वहाँ से निकले। उन्होंने नाई को आवाज देकर बुलाया और बोले—"लगता है इस गाँव में कोई नाई नहीं है, नहीं तो इस आदमी के बाल इतने क्यों बढ़ जाते?" नाई खिसियाते हुए बोला—"महाराज! नाई तो मैं ही हूँ, पर जब कोई मेरे पास बाल कटवाने ही नहीं आएगा तो बाल कैसे कटेंगे?" संत बोले—"तो बेटा! यदि दुखियारे भी ईश्वर के पास नहीं जाएँगे तो वो उनको कैसे मदद पहुँचाएगा?" ईश्वर तो प्रत्येक की मदद करने को तैयार है, पर उसे पुकारना भी तो पड़ता है।

बच्चों की संस्कारशाला है परिवार

परिवार को बच्चों को अच्छे संस्कार देने का केंद्र बनाने की जरूरत है। ऐसा करते हुए ध्यान रखें कि बच्चों पर अनावश्यक दबाव न डालें। उनके साथ कभी भी जबरदस्ती न करें। भूलकर भी हिंसा न करें, बहुत प्रेम से, अपने जीवन के परिवर्तन से, बहुत शांति से, बहुत सरलता से बच्चे को सुझाएँ। आदेश न दें, यह न कहें कि ऐसा करो; क्योंकि जब भी कोई कहता है, ऐसा करो तभी सुनने वाले के भीतर यह ध्वनि पैदा होती है कि हम ऐसा नहीं करेंगे।

यह बिलकुल सहज और स्वाभाविक है। इसलिए उससे यह मत कहो कि ऐसा करो, बल्कि उससे ऐसा कहें कि मैंने ऐसा किया और आनंद पाया, अगर तुम्हें आनंद पाना हो तो इस दिशा में सोचना। उसे समझाना एवं सुझाव देना चाहिए। उसे आदेश और उपदेश नहीं देना चाहिए। उपदेश और आदेश मनोवैज्ञानिक रूप से बड़े ही खतरनाक सिद्ध होते हैं।

छोटे बच्चे का बहुत आदर करें; क्योंकि जिसका हम आदर करते हैं, उसको ही केवल हम अपने हृदय के निकट ला पाते हैं। यह विरोधाभास मालूम पड़ेगा। हम तो चाहते हैं कि छोटे बच्चे बड़ों का आदर करें। हम उनका कैसे आदर करें, लेकिन अगर हम चाहते हैं कि छोटे बच्चे माँ-बाप का आदर करें तो पहले उनको आदर देना पड़ेगा। यह असंभव है कि माँ-बाप उनका अनादर करें और बच्चों से आदर पा लें।

अंतर्मुखी कोई तभी बन सकता है, जब उसके भीतर आनंद की ध्वनि गूँजने लगे। हमारा चित्त वहीं चला जाता है, जहाँ आनंद होता है। अगर कोई वहाँ एक वीणा बजाने लगे और गीत गाने लगे, तो फिर हमको अपने मन को वहाँ ले जाना थोड़े ही पड़ता है, बल्कि वह स्वतः चला जाता है। हम अचानक पाएँगे कि हमारा मन हमें नहीं सुन रहा है, वह वीणा सुन रहा है। मन तो वहाँ जाता है, जहाँ सुख है, जहाँ संगीत है, जहाँ रस है। बच्चे बहिर्मुखी इसलिए हो जाते हैं; क्योंकि वे माँ-बाप को बाहर की तरफ दौड़ते हुए देखते हैं।

वे उनको देखते हैं—बहुत अच्छे कपड़ों की तरफ दौड़ते हुए, मोबाइल की तरफ दौड़ते हुए, बड़े मकान की तरफ दौड़ते हुए, इसलिए उन बच्चों का जीवन बहिर्मुखी हो जाता है। अगर वे देखें उनको आँख बंद किए हुए और उनके चेहरे पर आनंद झरते हुए और वे देखें उनको प्रेम से भरे हुए और वे देखें उनको छोटे मकान में भी प्रफुल्लित और आनंदित और वे कभी-कभी देखें कि माँ आँख बंद कर लेती है और किसी आनंद लोक में चली जाती है तो वे पूछेंगे कि यह क्या है? तो वे उसका कारण जानना चाहेंगे और वही जानना, वही पूछना, वही जिज्ञासा फिर उनका जीवन मार्ग बन जाएगी।

सबसे पहले अंतर्मुखी होना स्वयं सीखें। अंतर्मुखी होने का अर्थ है कि कुछ देर के लिए सब तरह से चुप हो जाएँ, मौन हो जाएँ। स्वयं के भीतर से आनंद को उठने दें, भीतर से शांति को उठने दें। सब तरह से मौन और शांत होकर घड़ी-दो घड़ी के लिए बैठ जाएँ। जो माता-पिता चौबीस घंटे में घंटे-दो घंटे भी मौन होकर नहीं बैठते, उनके बच्चों के जीवन में मौन नहीं विकसित हो सकता।

यदि बच्चे माता-पिता को कलह करते हुए, लड़ते हुए, एकदूसरे को दुर्वचन बोलते हुए देखते हैं, उनके बीच कोई बहुत गहरा प्रेम का संबंध नहीं देखते, कोई शांति नहीं देखते, कोई आनंद नहीं देखते तो वे भी वैसे ही भाव विकसित करते हैं। वे तो जब उदासी, ऊब, घबराहट, परेशानी देखते हैं तो ठीक इसी तरह की जीवन की दिशा उनकी हो जाती है।

बच्चों को बदलना हो तो स्वयं को बदलना जरूरी है। अगर बच्चों से प्रेम हो तो खुद को बदल लेना एकदम जरूरी है। जब तक हमारे कोई बच्चा नहीं था, तब तक हमारी कोई जिम्मेदारी नहीं थी। बच्चा होने के बाद एक जिम्मेदारी हमारे ऊपर आ जाती है। परिवार बच्चों की संस्कारशाला है। वहाँ उसे सद्व्यवहार सिखाया जाना चाहिए। उसे संस्कारित करना चाहिए। हम सबको इसी दिशा में प्रयास करना चाहिए। ❑

ग्लानि और हीनता से कुछ ऐसे उबरें

सामाजिक जीवन में ग्लानि, भय एवं हीनता तथा इनसे उत्पन्न उद्वेग के भाव ऐसे भँवर के समान हैं, जो व्यक्ति की क्षमताओं को कुंद कर देते हैं। साथ ही ये मिलकर जीवन को असहज एवं असामान्य बना देते हैं, जिनसे व्यक्ति का सामाजिक एवं पेशेवर जीवन प्रभावित होता है, साथ ही व्यक्ति गहरे तनाव-अवसाद में जीने के लिए अभिशप्त भी होता है।

इनसे जितना जल्दी उबर सके, उतना ही व्यक्तित्व के उत्कर्ष की दृष्टि से अभीष्ट रहता है, लेकिन यदि ये स्वभाव के अंग बन चुके हैं, तो कार्य थोड़ा समयसाध्य हो जाता है। ऐसे में धैर्य एवं सूझ भरे दृढ़ कदमों के साथ ही इनसे पार पाया जा सकता है।

इसके लिए आवश्यक होता है कि पहले अपने नकारात्मक आत्मसंवाद को समझें व स्वयं को स्वीकार करें। इससे जितना जल्दी व दृढ़ता से निपटा जाए, उतना ही उत्तम रहता है। लंबे समय तक की नकारात्मक सोच एवं क्रियाओं ने इनको इतनी गहरी जड़ें जमाने का अवसर दिया है कि अब ये जैसे पूरे व्यक्तित्व पर अपना अधिकार जमा बैठे हैं।

इसके उपचार में सामान्य प्रयासों से कुछ सार्थक होने वाला नहीं। इनको जड़ से उखाड़ फेंकने या इनको रूपांतरित करने के लिए इनके विरुद्ध एक तरह से धर्मयुद्ध छेड़ने की आवश्यकता होती है, लेकिन इसके लिए पहला कदम रहता है इनको स्वीकारने व समझने का और फिर इसके साथ चिंतन के नए तौर-तरीके एवं जीवनशैली को अपनाने का।

सकारात्मक स्व-अवधारणा, इसका पूरक चरण है, जिसमें अपने प्रति सम्मान एवं गौरव का भाव पैदा किया जाता है। इसके लिए सकारात्मक आत्मसंवाद की आवश्यकता होती है, जिसके तहत स्व की अवधारणा को नैतिकता एवं सामाजिक दायरे से आगे बढ़ाकर आध्यात्मिक आयाम से जोड़ना होता है, जिससे कि गहनतम स्तर पर आत्मसम्मान का भाव विकसित हो सके।

इसके लिए सतत सकारात्मक एवं पवित्र विचार, आत्मचिंतन, भगवद्भजन-सुमिरन, प्रार्थना एवं जप-ध्यान जैसे आध्यात्मिक उपचारों का अवलंबन लिया जा सकता है। साथ ही पूरी जीवनशैली को इनके अनुरूप अनुशासित करते हुए विचारों को अमली जामा पहनाया जाता है। इस तरह की वैचारिक पावनता एवं साधनात्मक दृढ़ता के साथ शनैः-शनैः एक नया आत्मसम्मान का भाव पुष्पित-पल्लवित होना शुरू होता है।

यह भाव पुष्ट हो, मजबूती पकड़े इसके लिए प्रारंभ में इसके विशेष संरक्षण की आवश्यकता रहती है। इसके लिए प्रलोभनों एवं नकारात्मक तत्त्वों से सावधान रहें, जो कि इस भाव के विरोधी हैं। साधना समर में विजय के लिए मोर्चे पर एक नैष्ठिक योद्धा की भाँति सजग रहना पड़ता है अन्यथा विचार, व्यवहार एवं आचरण की छोटी-छोटी लापरवाहियाँ एक बड़ी गलती का कारण बन सकती हैं तथा ऐसे में कितनी बार साधकों को प्रलोभनों एवं अवांछनीय तत्त्वों के समक्ष घुटने टेकने के लिए विवश-बाध्य होते देखा जाता है।

जब हम इंद्रिय संयम के प्रति लापरवाह होते हैं, असंयमित जीवन जीते हैं, दुष्कृत्यों में संलग्न रहते हैं या दुष्प्रवृत्तियों को प्रश्रय देते हैं, तो कहीं-न-कहीं हम अपने आत्मसम्मान का भाव खो रहे होते हैं, अपराध-बोध की ग्लानि हमें कहीं गहरे जकड़ रही होती है। अतः तनाव अवसाद के अँधेरे गह्वर में धकेलने वाले प्रलोभनों एवं मन के बहकावों से सजग व सावधान रहें। इनका साहस के साथ सामना करते हुए आत्मा के राज्य में प्रवेश करें व आत्मचेतना की इंच-इंच भूमि पर संघर्ष करते हुए, विजय पताका फहराते हुए, अपना जन्मसिद्ध अधिकार सुनिश्चित करते चलें।

इसी के साथ व्यक्ति मनोनिग्रह एवं स्व-प्रबंधन के सोपानों को पार करता हुआ छोटी-छोटी विजय के साथ अपने नकारात्मक विचारों एवं हीन भावों से बाहर निकलता है। इन पलों में उपासना के साथ साधना का महत्त्व समझ में आता है और आत्मदेव की साधना जीवन का हिस्सा

बनती जाती है। इसी के साथ अपने कार्यक्षेत्र में विषय की जानकारी एवं पकड़ के साथ आत्मविश्वास का भाव भी विकसित होता है। मन की क्षमताओं एवं जीवन की दक्षताओं के स्वाभाविक विकास के साथ एक नया आत्मविश्वास जगता है। अपने लक्ष्य पर केंद्रित रहने से तथा सामाजिक जीवन में अपनी उपयोगिता का एहसास होने के साथ ग्लानि, भय एवं हीनता के भाव हलके होने शुरू होते हैं और एक शांत, परिपक्व एवं सशक्त व्यक्तित्व का निर्माण शुरू होता है।

यहाँ नित्य कुछ पल आत्मचिंतन के साथ ध्यान के क्षण इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, जिससे कि ध्यान की गहराइयों में अंत:करण की जटिल ग्रंथियों का भेदन करते हुए इन्हें समाधान की ओर प्रवृत्त किया जा सके। इन पलों में इष्ट के समक्ष एक शिशु के समान अपने जीवन सत्य के साथ खड़े होकर अपनी तमाम तरह की क्षुद्रता, मलिनता, दुर्बलता, अच्छाई-बुराई, सब कुछ साझा करते हुए स्वयं को अर्पित करने के भाव के साथ ग्रंथियाँ हलकी पड़ती हैं। प्रार्थना के इन पलों में हर श्वास में अपने इष्ट-आराध्य से संवाद तथा सद्गुरु की शरण में जाना भी एक अचूक उपाय रहता है।

इस तरह हर दिन, प्रतिपल उपासना-साधना एवं आराधना की त्रिवेणी में स्नान करते हुए ग्लानि, भय, संशय एवं दुविधा की ग्रंथियाँ हलकी पड़ने लगती हैं। बस, ध्यान अपने आत्मस्वरूप, इष्ट-आराध्य, गुरुसत्ता एवं आदर्श की ओर उन्मुख रहे। ऐसा होने पर एक नए उत्साह, ऊर्जा एवं विश्वास के साथ जीवन आप्लावित होने लगेगा।

इसके लिए आवश्यकता बस, एक साहसिक प्रयास की रहती है। जब समझ आता है कि कब तक किनारे पर बैठे लहरें गिनते रहेंगे, तो फिर उफनती धारा में साहसिक छलाँग के साथ उफनती धारा को पार लगाने का अवसर आ जाता है। इसके साथ फिर जीवन की भयावह चुनौतियाँ उत्कर्ष की, विकास की एवं नवजीवन की सीढ़ियाँ बन जाती हैं। ❑

संत रैदास मोची का काम किया करते थे। अपने काम को भगवान की पूजा मानकर वे पूरी लगन एवं ईमानदारी से पूरा किया करते। एक साधु को सोमवती अमावस्या के दिन गंगास्नान करने को साथ-साथ चलने के लिए उन्होंने आश्वासन दिया। उस दिन वे साधु रैदास के पास पहुँचे। रैदास लोगों के जूते सीने का काम हाथ में ले चुके थे। ग्राहकों को उनका सामान निर्धारित समय पर देना था। अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए रैदास ने कहा—"महात्मन्! आप मुझे क्षमा करें। मेरे भाग्य में गंगा का स्नान नहीं है। आप यह एक पैसा लेते जाएँ और गंगा माँ को मेरे नाम पर चढ़ा दें। साधु गंगा स्नान के लिए समय पर पहुँचे। मन-ही-मन वे माँ गंगा से बोले—"माँ ! यह पैसा रैदास ने भेजा है, कृपा कर इसे स्वीकार करें।" इतना कहना था कि गंगा की अथाह जलराशि से दो विशाल हाथ बाहर उभरे और पैसे को हथेली में ले लिया। साधु यह दृश्य देखकर विस्मित रह गए और सोचने लगे—"मैंने गंगा आकर स्नान किया तो भी गंगा माँ की ऐसी कृपा नहीं प्राप्त हो सकी; जबकि गंगा का बिना स्नान किए ही रैदास को उनकी इतनी अनुकंपा प्राप्त हो गई।" वे उसी समय रैदास के पास पहुँचे और पूरी घटना बताई। रैदास अनुगृहीत हो बोले—"महात्मन्! यह सब कर्त्तव्य धर्म के निर्वाह का प्रतिफल है। इसमें मुझ अकिंचन के तप, पुरुषार्थ की कोई भूमिका नहीं।"

चेतना की शिखर यात्रा – 227

कुछ अदृश्य पन्ने

विगत अंक में अपने पढ़ा कि संध्यावंदन की पारंपरिक विधि की जटिलता को सरल व सुगम बनाने के लिए आयोजित विमर्श के क्रम में महर्षि विश्वामित्र के आग्रह पर पूज्य गुरुदेव ने सिद्धाश्रम में समस्त ऋषिगणों के समक्ष गायत्री योग की समग्र रूपरेखा रखी। साधनात्मक उपचार को सार्वजनीन बनाने के उद्देश्य से कम समय में ही संपन्न हो जाने वाली पूज्यवर द्वारा प्रवर्तित गायत्री योग की इस विधि में संध्यावंदन के सभी पाँच प्रमुख कृत्यों का समावेश था। इस विधि को महर्षि विश्वामित्र एवं अन्य ऋषिगणों द्वारा स्वीकार कर लेने के उपरांत सर्वसम्मति के आधार पर यह सुनिश्चित हुआ कि आगामी वसंत पंचमी से इस विधान को सार्वजनिक किया जाए। इस मंत्रणा के पश्चात पूज्यवर साधक को उसी सूक्ष्मपथ से वापस लौटा लाए। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ...

1975 की दीपावली बीत चुकी थी। हवाएँ सर्द और हिमालय की तराई में बरफीली होने लगी थीं। शांतिकुंज से दूर पहाड़ियों पर यदा-कदा बरफीली चादर दिखाई देती। ये दृश्य शांतिकुंज परिसर से भी दिखते थे। कभी वास्तव में और कभी कल्पना में। कल्पना में इसलिए कि सुबह के कुहासे को चीरता हुआ सूरज जब पूर्व दिशा में अपनी किरणें बिखेरता तो प्रतीत होता था कि बरफ फैल रही है। नहीं होने पर भी आभास तो मिलता ही कि एक श्वेत धवल चादर तन रही है।

कार्तिक शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि रही होगी। शांतिकुंज के बाहर और पीछे सड़क पर गायों के झुंड निकल रहे थे। सजी-धजी गायों के गले में बँधी घंटियाँ बिना किसी लय-ताल के बजतीं और वातावरण में संगीत बिखेर देतीं। उस दिन गोपाष्टमी थी। आस-पास के आश्रमों में गो-पूजा का उत्सव मनाया गया। पूजा के बाद गायें और उनके सेवक अर्चक नित्य कार्यों में लग गए थे। आश्रमों में बने अर्चागृहों में आरती स्तवन के स्वर गूँजने लगे थे।

जो लोग तीर्थ सेवन और गंगा दर्शन के लिए आए थे, वे अपने-अपने आश्रम से निकलने लगे। राह चलते हुए वे जो भजन गाते और स्तुतिगान करते थे उनकी गुनगुनाहट वृक्षों पर चहचहाने वाले पक्षियों, उनके शावकों और घोंसला छोड़कर उड़ने की तैयारी कर रहे पखेरुओं के स्वरों से मिलकर मधुर राग छेड़ देती।

शांतिकुंज में गुरुदेव ने उस दिन का लेखन कार्य संपन्न किया और कंधों पर ओढ़ी, तह कर रखी हुई शाल खोली। उसे लपेटकर वे कक्ष से बाहर निकले और बाहर बरामदे में चहलकदमी करने लगे। कुछ कदम ही चले होंगे कि उनका ध्यान आकाश में तैरते हुए एक बादल के टुकड़े की ओर गया। वह टुकड़ा जैसे गुरुदेव के पास ही उड़ा चला आ रहा था। इस तरह उड़ रहा था, जैसे पग-पग चल रहा हो। पास आते-आते वह आकार लेने लगा। बरामदे के बाहर आकर रुक गया और मानवीय आकार लेने लगा। कुछ ही क्षणों में वहाँ एक वायवीय शरीर उभरने लगा।

आकृति धीरे-धीरे स्पष्ट हुई। उन्नीसवीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों जैसी वेशभूषा में एक अधेड़ अँगरेज व्यक्तित्व सामने हवा में खड़ा था। चेहरे पर घनी-लंबी मूँछें। सिर पर थोड़े से बाल और हलकी दाढ़ी वाला यह व्यक्ति ऊँचे पूरे कद का था। गुरुदेव ने उस पुरुष छाया को चीन्हते हुए अभिवादन में हाथ उठाया। उस पुरुष आकृति ने झुककर प्रणाम किया और अपना परिचय देने के लिए ओंठ खोले ही थे कि गुरुदेव ने कहा—"आइए ह्यूम साहब। भीतर आ जाएँ। आपका स्वागत है।"

वह आकृति बरामदे में उतर आई। गुरुदेव ने उन्हें अपने कक्ष में आमंत्रित किया और अपने साथ ले जाते हुए यह भी कहा कि आपके आगमन की सूचना मिल गई थी। सुबह या नौ-दस बजे तक आपके आने की संभावना थी। प्रयोजन भी स्पष्ट था। सिर्फ आपसे मिलना बाकी था। वह साध भी पूरी हो रही है।

गुरुदेव के बताए स्थान पर बैठते हुए ह्यूम ने थोड़ा संकोच जताया। कहा कि साध तो मेरी पूरी हो रही है गुरुदेव। आपकी कृपा से हम लोगों ने सौ साल पहले जो काम शुरू किया था, वह आपके मार्गदर्शन में ही पूरा हो रहा है। ह्यूम के वायवीय शरीर ने गुरुदेव के चरणों में प्रणाम किया और आश्वस्त-सा होते हुए कहा कि आपसे आज की मुलाकात के बाद हम लोग विश्राम से सो सकेंगे। मैडम ने हम अंतरंग पार्षदों को जो दायित्व सौंपा है, वह भी पूरा हो सकेगा।

इस प्रसंग को कुछ पल के लिए विराम देकर पृष्ठभूमि में चला जाए। जिस वायवीय शरीर का यहाँ उल्लेख किया गया है, वह 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना करने वाले सर एलन आक्टेवियन ह्यूम (1829-1912) का था। ब्रिटेन में जन्मे ह्यूम ने भारत में बंगाल सिविल सर्विस से अपना कामकाजी जीवन शुरू किया और 1882 में रिटायर होने तक वे विभिन्न प्रशासनिक पदों पर रहे। कामकाजी जीवन के दौरान उन्होंने अनुभव किया कि सरकार के क्रियाकलापों, नीतियों और फैसलों से जनता में असंतोष फैल रहा है।

इस असंतोष को संगठित करने के लिए उन्होंने समकालीन सामाजिक और राजनीतिक विभूतियों के साथ मिलकर काम शुरू किया। सन् 1884 के अंत में उन्होंने सुरेंद्रनाथ बनर्जी और व्योमेशनाथ बनर्जी के साथ मिलकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का निश्चय किया। साल भर घनघोर प्रयत्न करने के बाद उन्होंने तथा दादा भाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता और गोपाल कृष्ण गोखले आदि ने साथ मिलकर दिसंबर, 1885 में कांग्रेस की स्थापना कर ली। कांग्रेस की स्थापना से दो साल पहले ह्यूम ब्रिटिश राज की सेवाओं से निवृत्त हो चुके थे।

ए.ओ. ह्यूम के बारे में प्रसिद्ध है कि वे शरीर से भले ही भारतीय न हों, लेकिन उनकी काया में भारतीय आत्मा का निवास था। भारत और भारतीय समाज के प्रति उनके लगाव को देखकर यह स्थापित हो चुका था कि उन्होंने सरकारी सेवा में रहते हुए अँगरेज सरकार से भारतीयों को उनके अधिकार दिलाने की भरपूर चेष्टा की। उन्होंने यह बताने की चेष्टा भी की कि भारत के लोग अपने देश का प्रबंध सँभालने में सक्षम हैं। उन्हें भी सरकारी नौकरियों और प्रशासनिक सेवाओं में समानता मिलनी चाहिए।

यह तो ह्यूम के व्यक्तित्व का प्रशासनिक और राजनीतिक पक्ष था। दूसरा पक्ष आंतरिक और आध्यात्मिक है, जिसकी कम ही चर्चा होती है। इस पक्ष के संबंध में सूचना है कि गरमियों में ह्यूम ने अपने शिमला स्थित निवास में गोपनीय दस्तावेजों की सात बड़ी-बड़ी जिल्दें पढ़ी थीं। तब ह्यूम सरकारी सेवा से रिटायर हो चुके थे। इन दस्तावेजों के बारे में कहा जाता है कि शासनतंत्र ने इन्हें जिलास्तर की शाखाओं में कार्यरत अधिकारियों और कर्मचारियों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर तैयार किया था।

इन दस्तावेजों के बारे में सी.एफ. ह्यूम, गिरिजा मुखर्जी, गुरुमुख निहालसिंह, लाला लाजपत राय और रजनी पामदत्त आदि विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से टिप्पणी की है। कुछ के अनुसार इनमें अँगरेजों के प्रति भारतीय समाज में बढ़ रहे रोष की सूचना थी, कुछ के अनुसार लोगों द्वारा ब्रिटिश सरकार को धोखा देने और अपना अलग स्वायत्त तंत्र विकसित कर लेने की जानकारी थी। ए. ओ. ह्यूम के उस अध्ययन के बारे में प्रामाणिक जानकारी उनके समकालीन ब्रिटिश अधिकारी विलियम वेडरबर्न ने दी थी।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय मुंबई (तब बॉम्बे) हाईकोर्ट में जज रहे और बाद में मुंबई सरकार के मुख्य सचिव बनकर रिटायर हुए वेडरबर्न ह्यूम के अच्छे दोस्त थे। उन्होंने ह्यूम की जीवनी में लिखा है कि शिमला में बैठकर उन्होंने जो दस्तावेज देखे थे, उनमें देश भर में फैले मठों, महात्माओं और उनके शिष्यों के अलावा सिद्ध संतों के बारे में पर्याप्त सूचनाएँ थीं। उनकी गतिविधियों के अलावा भारत के भविष्य के बारे में उनकी योजनाओं और अंतर्दर्शन के बारे में भी काफी सूचनाएँ थीं।

इन सूचनाओं के आधार पर वेडरबर्न ने लिखा है कि ह्यूम का ऐसे महात्माओं से संपर्क था, जो कंदराओं में रहकर रहस्यमय साधनाएँ करते रहते थे। वे कहीं भी आ-जा सकते थे, लेकिन लोगों को दिखाई नहीं देते। वे अदृश्य रहते और संसार में किसी भी व्यक्ति, जीव और यहाँ तक कि जड़ वस्तुओं से भी संवाद कर सकते थे।

सिद्धों से संचालित संग्राम

थियोसोफिकल सोसाइटी, का एक प्रतिनिधि कूट हूमीलाल सिंह इन महात्माओं से मिलने के लिए जाया भी करता था। सोसाइटी में मास्टर कूट हूमी के नाम से प्रसिद्ध इस प्रतिनिधि ने उन अशरीरी महात्माओं के हवाले से लिखा था कि सिद्धों की उस संसद ने ही 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का संचालन किया। जिन क्रांतिकारियों और योद्धाओं को उन्होंने अपना माध्यम बनाया था, उन्होंने सिद्धों के निर्देशों का पूरी तरह पालन किया। संग्राम के जो परिणाम सामने आए, सिद्धपुरुष उससे संतुष्ट थे।

इतिहास में वह संग्राम भले ही विफल लिखा गया हो, लेकिन सिद्ध पुरुष उसे वहीं तक ले जाना चाहते थे। वे चाहते तो इसे आगे तक ले जा सकते थे, पर उनकी दृष्टि में भारतीय जनमानस इससे आगे के परिवर्तन झेलने के लिए तैयार नहीं था। पूर्ण स्वतंत्रता या नए राष्ट्र राज्य की स्थापना के लिए उनके अनुसार नब्बे वर्ष का एक चक्र पूरा होना आवश्यक था। और वह चक्र पूरा हुआ भी सही।

उस समय के उपलब्ध सोसाइटी के दस्तावेज बताते हैं कि कूट हूमी जैसे कई प्रतिनिधि सिद्ध महात्माओं के संपर्क में थे और वे ह्यूम को उनकी योजनाओं के बारे में बताया करते थे। उन सूचनाओं के आधार पर और अपने प्रत्यक्ष संपर्कों से मिली जानकारी के अनुसार ह्यूम ने नवंबर 1886 में लार्ड डफरिन को लिखा था कि भारत परिवर्तन के लिए तैयार हो रहा है। भविष्य में वह नए विश्व के निर्माण में बड़ी भूमिका निभाएगा। इस देश में मौजूद अँगरेजी राज उस भूमिका के लिए तैयार करने का एक छोटा-सा दायित्व ही पूरा कर रहा है। जिस दिन वह दायित्व पूरा हो जाएगा, अँगरेज यहाँ एक मिनट भी नहीं रह सकेंगे। इसलिए ब्रिटेन को यह नहीं सोचना चाहिए कि इस देश पर शासन करना अथवा यहाँ का मालिक होना उसकी नियति है। (क्रमशः)

एक किसान ने अपनी गाड़ी में बैलों की जगह भैंसों को जोत दिया। उसके संगी-साथियों ने उसे बहुतेरा समझाया, पर उसे समझ में नहीं आया और वह बोला—''तुम लोग लकीर-के-फकीर हो। कौन-सी किताब में लिखा है कि भैंसों के हल से खेत नहीं जोत सकते। भैंसों में ज्यादा ताकत होती है, मैं तो इन्हीं से काम लूँगा।''

बड़े शान से भैंसों को लेकर वह खेतों की ओर चला। रास्ते में एक दलदल पड़ा तो भैंसे रास्ता छोड़कर दलदल में जा घुसे। किसान ने लाख कोशिश की, पर भैंसों पर कोई अंतर नहीं पड़ा। सूरज ढलने पर वे खुद बाहर निकल आए।

खेतों से लौटते उसके मित्र बोले—''परंपरा का आँख मूँदकर पालन करना सही नहीं है, पर जो सत्य समक्ष खड़ा हो उससे मुँह फेर लेना भी मूर्खता है।'' अब जाकर बात किसान की समझ में आ गई।

वेदांत का शाश्वत संदेश

स्वामी रामतीर्थ भारत के आध्यात्मिक क्षितिज में चमक रहे एक अद्‌भुत संत, संन्यासी, योगी, अध्यात्मविद् व दार्शनिक का नाम है। वे शंकराचार्य के अद्वैतवाद के प्रबल समर्थक थे। वे स्वामी विवेकानंद से भी बहुत प्रभावित थे। सन् 1891 में पंजाब विश्वविद्यालय की बी.ए. की परीक्षा में वे प्रांत भर में प्रथम आए थे। अपने अत्यंत प्रिय विषय गणित में सर्वोच्च अंकों से एम.ए. उत्तीर्ण कर वे उसी कॉलेज में गणित के प्रोफेसर के रूप में नियुक्त हो गए, पर नियति ने तो उनके लिए कुछ और ही निर्धारित कर रखा था। उनके अंदर वैराग्य का भाव प्रबल होने लगा। सन् 1901 में उन्होंने तप करने हेतु हिमालय की ओर प्रस्थान किया।

ब्रह्म के चिंतन में, ध्यान में डूबे प्रो. तीर्थराम को अंततः एक दिन मध्यरात्रि को आत्मसाक्षात्कार हुआ। उनके मन के सभी भ्रम और संशय मिट गए। उन्होंने स्वयं को ईश्वरीय कार्य के लिए समर्पित कर दिया और वे प्रोफेसर तीर्थराम से स्वामी रामतीर्थ हो गए। वे वेदांत दर्शन व भारतीय संस्कृति का उद्‌घोष अपने प्रवचनों में करने लगे।

उन्होंने अमेरिका व जापान में लोगों को अमृत संदेश देते हुए कहा—''आप लोग देश और ज्ञान के लिए सहर्ष प्राणों का उत्सर्ग कर देते हैं। यह वेदांत के अनुकूल है। आप सबके लिए राम का एक ही संदेश है—अपने आप को पहचानो, तुम स्वयं ईश्वर हो। शाश्वत शांति का एकमात्र उपाय है—आत्मज्ञान।''

सन् 1904 में स्वदेश लौटने पर लोगों ने रामतीर्थ से अपना कोई संगठन या समाज बनाने का आग्रह किया। इस पर स्वामी रामतीर्थ ने बाँहें फैलाकर कहा कि भारत में जितने समाज हैं, संगठन हैं, आश्रम हैं, वे सब राम के ही तो हैं। वे सब मेरे अपने ही तो हैं। उनकी दृष्टि में सारा संसार केवल एक आत्मा का ही खेल था। जिस शक्ति से हम बोलते हैं, उसी शक्ति से उदर में अन्न पचता है। उनमें कोई अंतर नहीं। जो शक्ति एक शरीर में है, वही सब शरीरों में भी है।

उनका मानना था कि मनुष्यों की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ हैं। कोई मनुष्य अपने परिवार से, कोई जाति से, कोई समाज से तो कोई संप्रदाय से घिरा हुआ है, बँधा हुआ है। कोई मनुष्य सिर्फ स्वयं के बारे में सोचता है, स्वयं का भला चाहता है, कोई परिवार के बारे में सोचता है, कोई सिर्फ अपने ही समाज व संप्रदाय के बारे में सोचता है, पर सच्चा मनुष्य तो वही है; जो समष्टिगत हित में सोचता है, जो समस्त सृष्टि को भगवान का प्रतिरूप मानकर सबको अपना ही मानता है और सबके सुख, सौभाग्य व कल्याण की भावना रखता है।

संकीर्णता के कारण व्यक्ति को अपने घेरे के भीतर के लोग, समाज, संप्रदाय अनुकूल लगते हैं और घेरे से बाहर के लोग, समाज व संप्रदाय प्रतिकूल लगते हैं। यही संकीर्णता अनर्थों की जड़ है। प्रकृति में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं। अस्तु अपनी सहानुभूति के घेरे भी फैलाने चाहिए। इसी से आत्मविस्तार संभव है। सच्चा मनुष्य वही है, जो देशमय होने के साथ-साथ विश्वमय भी हो जाता है। इसमें नुकसान कुछ भी नहीं, वरन लाभ-ही-लाभ है। यह प्रकृति के भी अनुकूल है। यह वेदांत के भी अनुकूल है।

वे कहते थे कि इसमें अपनी संकीर्णता का अंत भी है और अपना ही आत्मविस्तार है और उसी में आनंद है, परमानंद है, ब्रह्मानंद है। हमें हर पल यह स्मरण रहना ही चाहिए कि आनंद ही जीवन का परम लक्ष्य है। आनंद की खोज में, चाह में, हम जन्म से मरणपर्यंत भटकते फिरते हैं। कभी किसी वस्तु में सुख ढूँढ़ते हैं तो कभी किसी व्यक्ति में, पर आनंद का स्रोत तो हमारी आत्मा ही है। जो अपने सत्-चित्-आनंदस्वरूप आत्मा को विस्मृत कर, उस आनंद से विमुख है, वही वास्तव में दास है, गुलाम है और शाश्वत सुख व आनंद से वंचित है। अतः आनंद पाने के लिए हमें अपनी आत्मा की ही उपासना करनी चाहिए। स्वामी रामतीर्थ का यह जीवन संदेश हम सबके लिए अत्यंत प्रेरणादायी है। ❑

15 अगस्त, जन्मदिवस पर

क्रांति के प्रणेता—श्री अरविंद

श्री अरविंद क्रांतिकारी होने के साथ-साथ दार्शनिक भी थे। उनकी चेतना की प्रखरता के कारण उन्हें समाज ने महर्षि की उपाधि से नवाजा। वे क्रांतिकारी इसलिए थे कि वे देश की स्वतंत्रता और क्रांतिकारियों के लिए काम करते थे, वे सशस्त्र क्रांति को वैचारिक आधार पर भी पुष्ट कर रहे थे और दर्शनिक इसलिए थे कि उन्होंने मनुष्य के क्रमविकास का एक नया सिद्धांत गढ़ा। दर्शन शास्त्र में जीव वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन के साथ उनका नाम भी लिया जाता है।

अगर श्री अरविंद के जन्म और परिचय की बात करें तो उनका जन्म 15 अगस्त, 1872 को कलकत्ता में हुआ। श्री अरविंद के पिता के. डी. घोष अँगरेजी सभ्यता के पोषित तथा अँगरेजों के प्रशंसक थे। कितना आश्चर्य कि पिता अँगरेजों के प्रशंसक, लेकिन उनके चारों बेटे अँगरेजों के लिए ही सिरदरद बन गए।

श्री अरविंद के पिता ने उन्हें पाँच वर्ष की अवस्था में दार्जिलिंग के लोरेटो कान्वेंट स्कूल में दाखिल करवा दिया, जिसका प्रबंधन यूरोपीय लोग करते थे। श्री अरविंद अपने बाल्यकाल के सात वर्षों तक ही भारत में रहे, जिसके बाद पिता ने उन्हें भाइयों के साथ इंग्लैंड भेज दिया, जहाँ मैनचेस्टर के एक अँगरेज परिवार में उनका पालन-पोषण हुआ।

महर्षि अरविंद ने ब्रिटेन में अपनी शिक्षा सेंट पाल स्कूल और कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के किंग्स कॉलेज से प्राप्त की। पश्चिमी सभ्यता में पले-बढ़े महर्षि अरविंद एक दिन भारतीय संस्कृति के व्याख्याता होंगे, ऐसा शायद किसी ने सोचा भी नहीं होगा। फरवरी, 1893 में महर्षि अरविंद भारत लौटे, ब्रिटेन से लौटने के पश्चात उन्होंने बड़ौदा कॉलेज में अध्यापन कार्य किया। यही वह समय था, जब बंगाल विभाजन के परिणामस्वरूप देश में सन् 1857 के पश्चात क्रांति की ज्वाला एक बार फिर प्रखर हो रही थी, जिसका केंद्र कलकत्ता ही था। महर्षि अरविंद बड़ौदा से कलकत्ता भी आते-जाते रहते थे, जहाँ वे क्रांतिकारी गतिविधियों में सहयोग करने लगे।

बंगाल के महान क्रांतिकारियों में से एक महर्षि अरविंद देश की आध्यात्मिक एवं स्वतंत्रता के लिए क्रांति की पहली चिनगारी थे। उन्हीं के आह्वान पर हजारों बंगाली युवकों ने देश की स्वतंत्रता के लिए हँसते-हँसते फाँसी के फंदे को चूम लिया था। सशस्त्र क्रांति के पीछे उनकी ही प्रेरणा थी।

बड़ौदा से कलकत्ता आने के बाद महर्षि अरविंद आजादी के आंदोलन में उतरे। कलकत्ता में उनके भाई बारिन ने उन्हें बाघा जतिन, जतिन बनर्जी और सुरेंद्रनाथ टैगोर जैसे क्रांतिकारियों से मिलवाया। उन्होंने सन् 1902 में उनशीलन समिति ऑफ कलकत्ता की स्थापना में मदद की। उन्होंने लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के साथ गरमपंथ विचारधारा को बढ़ावा दिया। सन् 1906 में जब बंग-भंग का आंदोलन चल रहा था तो अरविंद ने बड़ौदा से कलकत्ता की ओर प्रस्थान कर दिया। जनता को जाग्रत करने के लिए अरविंद ने उत्तेजक भाषण दिए। उन्होंने अपने भाषणों तथा अखबार 'वंदे मातरम्' में प्रकाशित लेखों के द्वारा अँगरेज सरकार की दमन नीति की कड़ी निंदा की थी।

श्री अरविंद का नाम सन् 1905 के बंगाल विभाजन के बाद हुए क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़ा और सन् 1908-09 में उन पर अलीपुर बमकांड मामले में राजद्रोह का मुकदमा चला। जिसके फलस्वरूप अँगरेज सरकार ने उन्हें जेल की सजा सुना दी। इस पर श्री अरविंद ने कहा था—"चाहे सरकार क्रांतिकारियों को जेल में बंद करे, फाँसी दे या यातनाएँ दे, पर हम यह सब सहन करेंगे और यह स्वतंत्रता का आंदोलन कभी रुकेगा नहीं। एक दिन अवश्य आएगा, जब अँगरेजों को हिंदुस्तान छोड़कर जाना होगा।" इत्तफाक नहीं है कि 15 अगस्त को भारत को आजादी मिली और इसी दिन उनका जन्मदिन मनाया जाता है। सजा के लिए उन्हें अलीपुर जेल में रखा गया। इस जेल में श्री अरविंद का जीवन ही बदल गया। वे जेल की कोठरी में ज्यादा-से-ज्यादा समय साधना और तप में लगाने लगे।

श्री अरविंद जब अलीपुर जेल में थे तब साधना के मार्ग में हुए परिवर्तनों के कारण वे क्रांतिकारी आंदोलन को

छोड़कर योग और अध्यात्म में रम गए। जेल से बाहर आकर वे किसी भी आंदोलन में भाग लेने को इच्छुक नहीं थे। इसके बाद श्री अरविंद गुप्त रूप से पांडिचेरी चले गए। वहीं पर रहते हुए श्री अरविंद ने योग द्वारा सिद्धि प्राप्त की और आज के वैज्ञानिकों को बता दिया कि इस जगत् को चलाने के लिए एक अन्य जगत् और भी है।

श्री अरविंद ने पांडिचेरी में आश्रम बनाया। वहीं सन् 1914 में मीरा नामक फ्रांसीसी महिला की श्री अरविंद से पहली बार मुलाकात हुई, जिन्हें बाद में श्री अरविंद ने अपने आश्रम के संचालन का पूरा भार सौंप दिया। श्री अरविंद और उनके सभी अनुयायी उन्हें आदर के साथ 'मदर' कहकर पुकारने लगे। श्री अरविंद का देहांत 5 दिसंबर, 1950 को हुआ। बताया जाता है कि निधन के बाद चार दिन तक उनके पार्थिव शरीर में दिव्य आभा बने रहने के कारण उनका अंतिम संस्कार नहीं किया गया और अंतत: 9 दिसंबर को उन्हें आश्रम में समाधि दी गई।

श्री अरविंद एक महान योगी और दार्शनिक थे। उनके चिंतन का पूरे विश्व के दर्शनशास्त्र पर प्रभाव पड़ा। उन्होंने जहाँ वेद, उपनिषद् आदि ग्रंथों पर टीकाएँ लिखीं तो वहीं योग-साधना पर मौलिक ग्रंथ भी लिखे। खासकर उन्होंने डार्विन जैसे जीव वैज्ञानिकों के सिद्धांत से आगे चेतना के विकास की यात्रा का वर्णन किया और समझाया कि किस तरह धरती पर जीवन का विकास हुआ।

श्री अरविंद निष्क्रिय क्रांतिदर्शी नहीं थे। वे स्वदेशी के प्रवर्तक थे। शिक्षा क्षेत्र में वे राष्ट्रीय कॉलेज के आचार्य के रूप में आए और छात्रों के समक्ष आदर्श रखा कि भारतमाता के लिए पढ़ो और तन, मन एवं जीवन को उनकी सेवा के लिए शिक्षित करो। विदेश जाओ, ताकि वह विद्या लाओ, जिससे भारत माँ की सेवा हो; कष्ट सहो, ताकि माता प्रसन्न हो।

श्री अरविंद का जीवन विरोधाभासों से भरा था। राजनीति में वे सशस्त्र क्रांति के उद्घोषक थे। ब्रिटेन में बम बनाने के पूर्व ही श्री अरविंद के अनुयायी क्रांतिकारियों ने बम बना लिया था। अलीपुर बम केस मुजफ्फरपुर में जिलाधिकारी किंग्सफोर्ड पर किए गए ऐसे ही प्रयास का परिणाम था।

सन् 1896 से 1905 तक उन्होंने बड़ौदा रियासत में राजस्व अधिकारी से लेकर बड़ौदा कॉलेज के फ्रेंच अध्यापक और उपाचार्य का कार्य किया। साथ ही रियासत की सेना में क्रांतिकारियों को प्रशिक्षण भी दिलाया। हजारों युवकों को उन्होंने क्रांति की दीक्षा दी थी। विदेश प्रवास पर घुड़सवारी की परीक्षा में न बैठने के कारण वे डरपोक कहे जाते थे, पर वे बड़ौदा नरेश सयाजी राव गायकवाड़ के साथ घुड़सवारी पर जाते थे।

एक बार एक वृद्धा ने न पहचान कर महाराज से बोझा उठवाने को कहा था। महाराज बोझा उसके सर पर रखवा ही रहे थे कि श्री अरविंद का घोड़ा वहाँ आ पहुँचा। श्री अरविंद मुस्करा रहे थे। महाराज ने कारण पूछा तो उन्होंने कहा—"देख रहा हूँ जिसे प्रभु ने बोझा उतारने का काम दिया है, वह बोझा चढ़ा रहा है।"

श्री अरविंद निजी रुपये-पैसे का हिसाब नहीं रखते थे, पर राजस्व विभाग में कार्य करते समय उन्होंने जो आर्थिक विकास योजना बनाई थी, उसका कार्यान्वयन करके बड़ौदा देशी रियासतों में अनोखा बन गया था। वे रिश्वत और दस्तूरी प्रथा पसंद नहीं करते थे। यही कारण है कि उन्होंने दस्तूरी नहीं ली और वह काम छोड़ दिया। बड़ौदा रियासत में दस्तूरी चलती थी। एक बार एक जमींदार के काम को श्री अरविंद ने करने से इनकार कर दिया था। कुछ दिनों बाद उन्हें मेज पर 500 रुपये का लिफाफा मिला। पूछने पर सभी मुस्कराने लगे। अंत में चपरासी ने बताया कि उसी जमींदार की दस्तूरी में से आपका हिस्सा है।

श्री अरविंद ने दीवान से शिकायत की तो वे भी मुस्कराए तो उस कार्य को छोड़कर श्री अरविंद बड़ौदा कॉलेज में एक फ्रेंच अध्यापक के रूप में अध्यापन करने लगे। अध्यापन युग में वे मुंबई के इंदु प्रकाशपत्र में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध उग्र लेखों के लिए प्रसिद्ध थे। अचानक बंगाल में क्रांति यज्ञ की ज्वाला को धधकाने के लिए उन्होंने रुपये 665 मासिक की नौकरी छोड़ दी तो छात्रों ने समझा कि उन्हें और अच्छी नौकरी मिल गई होगी।

उन्होंने श्री अरविंद से पूछा—"सर! आपने यहाँ पढ़ाना छोड़ दिया?" "हाँ!"—श्री अरविंद का संक्षिप्त-सा उत्तर था। सर! वहाँ आपको कितना वेतन मिलेगा? एक सौ पचास रुपये। छात्रों को विश्वास हो गया कि वे पागल हो गए हैं। वस्तुत: यह एक संन्यासी का त्याग था।

श्री अरविंद पर धर्मपत्नी मृणालिनी और बहन सरोजनी का दायित्व भी था। अत: पैसे की जरूरत होने के बावजूद

उन्होंने कठिनाई का मार्ग चुना; जबकि उनके बड़े भाई विनय भूषण कूचबिहार और महिषादल जैसी रियासतों के दीवान बनकर ऐश्वर्यपूर्वक रहते थे। श्री अरविंद कलकत्ता आए तो राजा सुबोध मलिक की अट्टालिका में ठहराए गए, पर जनसाधारण को मिलने में संकोच होता था। अत: वे सभी को विस्मित करते हुए छक्कू खानसामा वाली गली में रहने आ गए।

श्री अरविंद ने वर्तमान बांग्लादेश में जाकर किशोरगंज में स्वदेशी आंदोलन प्रारंभ किया। उनका वेश बन गया धोती और चादर। उन्होंने राष्ट्रीय विद्यालय से भी अलग होकर क्रांतिकारी पत्रिका 'वंदे मातरम्' का प्रकाशन प्रारंभ किया। इसी के साथ विप्लवी युवकों को चुन-चुनकर उन्होंने संगठन में शामिल किया। चंद्रनगर के जिस अज्ञात अध्यापक ने 'वंदे मातरम्' को पत्र लिखा था; श्री अरविंद ने उसे खोज निकाला और वंदे मातरम् के संपादकीय विभाग में रख लिया। यही प्रख्यात विप्लवी उपेंद्र बंद्योपाध्याय थे।

ऐसे विप्लवी गण श्री अरविंद के संस्पर्श में आकर भारतमाता के लिए प्राण निछावर कर सके। उपेंद्र श्री अरविंद द्वारा स्थापित विप्लवी प्रशिक्षण केंद्र मानिकगता बगीचे में शस्त्र और शास्त्र के प्रशिक्षक भी बने थे। एक दिन तड़के पुलिस अधीक्षक ने श्री अरविंद के घर पर छापा मारा। श्री अरविंद चटाई पर लेटे थे। पहले तो, पुलिस अधीक्षक को यकीन ही नहीं हुआ कि 18 वर्ष लंदन में पढ़ा कोई व्यक्ति ऐसे रह सकता है, पर साथ के मजिस्ट्रेट ने जब मेज पर लैटिन और ग्रीक के शब्दकोश देखे तो उन्होंने उनकी कमर में बँधी रस्सी को खोलने का हुक्म दे दिया था।

अलीपुर बम केस में फाँसी के अभियुक्तों के लिए बनी कोठरी में श्री अरविंद के साथ दो कंबल और एक तसला था। जिससे वे स्नान करते, पानी पीते और उसी में दाल लेकर रोटी डुबाकर खाते थे। 9 मई, 1909 को वे जेल से छूटे। उनका जीवन गीता में वर्णित समबुद्धि का प्रतिफल था। स्वदेशी आंदोलन की आर्थिक चोट से बंगाल का विभाजन तो स्थगित हो गया था, पर स्वाधीनता के लिए सशस्त्र क्रांति को ही वे श्रेयस्कर मानते थे। उत्तरपाड़ा की सनातन धर्मरक्षिणी सभा के कार्यकारी सचिव अमरेंद्र चट्टोपाध्याय ने जब क्रांति दीक्षा लेनी चाही तो उन्हें श्री अरविंद के पास ले जाया गया।

अमरेंद्र ने कल्पना के विपरीत देखा कि लंदन में पले-बढ़े श्री अरविंद आधी धोती ओढ़े बैठे हैं। उन्होंने पूछा कि स्वाधीनता के लिए सर्वस्व त्याग का संकल्प है क्या? अमरेंद्र ने उत्तर दिया था कि जितना बाकी था, वह आज आपको देखकर पूरा हो गया। अपने 15 अगस्त, 1947 के संदेश में श्री अरविंद ने विश्वास प्रकट किया था कि चाहे जिस मार्ग से हो, चाहे जिस उपाय से हो भारत का विभाजन दूर होना चाहिए और होगा। श्री अरविंद के जीवन की अथाह गहराई को मापा नहीं जा सकता है, परंतु उनके आदर्शों को अपने जीवन में उतारा जा सकता है। ❑

इन दिनों ऐसे मणिमुक्तकों की तलाश हो रही है, जिनका सुगठित हार युगचेतना की महाशक्ति के गले में पहनाया जा सके। ऐसे सुसंस्कारियों की तलाश युग निमंत्रण पहुँचाकर की जा रही है। जो जीवित होंगे, करवट बदलकर उठ खड़े होंगे और संकटकाल में शौर्य प्रदर्शित करने वाले सेनापतियों की तरह अपने को विजयश्री वरण करने के अधिकारी के रूप में प्रस्तुत करेंगे। कृपण और कायर ही कर्त्तव्यों की पुकार सुनकर काँपते, घबराते और किसी कोटर में अपना मुँह छिपाने की विडंबना रचते हैं। एक दिन मरते तो वे भी हैं पर खेद, पश्चात्ताप की कलंक-कालिमा सिर पर लादे हुए। महाविनाश की विभीषिकाएँ अपनी मौत मरेंगी। अरुणोदय अगले ही क्षण जाज्वल्यमान् दिवाकर की तरह होगा। यह संभावना सुनिश्चित है। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 148

सामाजिक संस्थाओं में मीडिया प्रबंधन

आधुनिक युग में संचार क्रांति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। निरंतर बढ़ते सूचना एवं तकनीकी माध्यमों ने व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के स्वरूप को आमूलचूल परिवर्तित कर दिया है। संचार माध्यमों से प्रभावित-परिवर्तित जन समुदाय को अपने चारों ओर सर्वत्र प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। सूचना एवं संचार के इस युग में मीडिया एक ऐसी शक्ति के रूप में उभरकर सामने आया है, जो समाज और राष्ट्र की दिशा व दशा को अप्रत्याशित रूप से बदल देने की क्षमता रखती है। वर्तमान समय में मीडिया की महत्ता एवं आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता है, परंतु इस क्षेत्र की विसंगतियों और इसके नकारात्मक प्रभावों को नजरअंदाज करना भी घातक सिद्ध होगा।

मीडिया के प्रति सामान्य जन की बढ़ती रुचि और विश्वास के बावजूद भी मीडिया पर बाजारवाद से प्रेरित व नियंत्रित होने के गंभीर आरोप लग रहे हैं। ऐसे में मीडिया के प्रति सजगता और मीडिया प्रबंधन की आवश्यकता स्वीकार करना स्वाभाविक है। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए मीडिया प्रबंधन से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का कार्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय में पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के अंतर्गत संपन्न कराया गया है।

यह अध्ययन सन् 2019 में शोधार्थी आशुतोष कुमार दुबे द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं डॉ. स्मिता वशिष्ठ के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध अध्ययन का विषय है—**'सामाजिक संस्थाओं में मीडिया प्रबंधन की भूमिका—एक अध्ययन।'** प्रायोगिक एवं विवेचनात्मक विधि पर आधृत इस शोध अध्ययन को पाँच अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अध्याय है—प्रस्तावना। इसके अंतर्गत शोध विषय से संबंधित सभी सैद्धांतिक पहलुओं का विस्तृत विवेचन किया गया है। शोधार्थी ने मीडिया प्रबंधन और सामाजिक संस्थाओं के अंत: संबंधों से जुड़े महत्त्वपूर्ण पक्षों की विवेचना को इस अध्याय में सम्मिलित किया है। जैसे—संचार, जनसंचार, मीडिया, समाज, संस्था, सामाजिक संस्था, प्रबंधन, भारत में प्रबंधन का महत्त्व, मीडिया प्रबंधन आदि।

प्रबंधन के अंतर्गत नियोजन, समन्वयन, निर्देशन, अभिप्रेरणा, नियंत्रण, नीति-निर्धारण जैसे कई महत्त्वपूर्ण विषय आते हैं। चूँकि मीडिया समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और लोकतांत्रिक समाज में इसका प्रभाव व्यापक है, अत: मीडिया के क्षेत्र में भी प्रबंधन का विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक है। सामाजिक सरोकारों से जुड़ी संस्थाओं द्वारा जनकल्याण हेतु चलाई जाने वाली विभिन्न गतिविधियों को जन-जन तक पहुँचाने में मीडिया प्रबंधन एक सशक्त माध्यम साबित हो रहा है।

दूसरा अध्याय—'शोध पद्धति' है। इस अध्याय के अंतर्गत शोध विषय के प्रायोगिक पक्षों, महत्त्वपूर्ण तथ्यों का विवेचन किया गया है। शोधार्थी ने इस अध्याय में सर्वप्रथम इस शोध की आवश्यकता, उद्देश्य, महत्त्व और प्रासंगिकता को प्रस्तुत करते हुए शोध हेतु अपनाई गई वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक प्रक्रियाओं का विस्तृत विवेचन किया है। सामाजिक संस्थाओं का उद्देश्य समाज कल्याण और समाज विकास की सुधारात्मक व रचनात्मक गतिविधियाँ चलाना होता है।

ये संस्थाएँ मीडिया संदेशों के माध्यम से समस्याओं के उन्मूलन व मानवीय उत्थान के कार्यों को अधिकतम लोगों तक पहुँचा पाती हैं। व्यवस्थित और प्रभावकारी सूचना एवं जानकारी से समाज में जागरूकता एवं सकारात्मकता का वातावरण विनिर्मित होता है, जिसमें मीडिया प्रबंधन की अहम भूमिका होती है।

इस अध्ययन में सामाजिक संस्थाओं में मीडिया प्रबंधन के प्रभाव को तथ्यात्मक रूप से जानने के लिए दिल्ली, उत्तर प्रदेश व उत्तराखंड राज्य की चार सामाजिक संस्थाओं का चयन किया गया। ये चार संस्थाएँ हैं— भारत विकास परिषद्, हेस्को, श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम एवं संजीवनी सोशल वेलफेयर सोसायटी। शोधार्थी के अनुसार ये संस्थाएँ सामाजिक विकास के बहुआयामी उद्देश्यों व विचारों को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए मीडिया माध्यमों को व्यवस्थित तरीके से उपयोग कर रही हैं।

शोधार्थी ने इन संस्थाओं के माध्यम से मीडिया प्रबंधन के प्रभाव को ज्ञात करने के लिए यादृक्षिक प्रतिचयन विधि द्वारा 430 उत्तरदाताओं का चयन किया एवं इन्हें तीन वर्गों में, यथा—मीडिया प्रबंधन, विशेषज्ञ और लाभार्थी, में विभाजित कर स्वनिर्मित अनुसूची के द्वारा साक्षात्कार कर आँकड़ों का संग्रहण किया। इसके पश्चात तथ्यों को व्यवस्थित एवं विश्लेषित करने के लिए सारणीयन सामाजिक अनुसंधान विधि द्वारा परिणामों को विवेचित किया गया।

तृतीय अध्याय है—सामाजिक संस्थाओं में मीडिया प्रबंधन का स्वरूप। इसके अंतर्गत सामाजिक संस्थाओं का संगठनात्मक स्वरूप एवं गतिविधि, सामाजिक संस्थाओं में मीडिया रणनीति, सामाजिक संस्थाओं में मीडिया पदाधिकारी एवं उनकी कार्यपद्धति तथा सामाजिक संस्थाओं में मीडिया प्रबंधन के समक्ष चुनौतियों का विस्तृत विवेचन किया गया है। सामाजिक संस्थाएँ सैद्धांतिक रूप से जनकल्याण के विभिन्न उद्देश्यों को लेकर कार्य करती हैं तथा संस्था के कार्यकर्त्ता, पदाधिकारी व मीडिया परस्पर समन्वय व सहभागिता से निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हो पाते हैं।

ये संस्थाएँ अपने लक्ष्यों में जनभागीदारी व समस्याओं के निदान हेतु मीडिया रणनीति बनाकर सूचनाओं का आदान-प्रदान करती हैं। यह सब संस्था के प्रबंधन का आवश्यक हिस्सा होता है। संस्थाओं में मीडिया प्रबंधन के लिए मीडिया प्रभारी, जनसंपर्क अधिकारी, सूचनाधिकारी व इनकी सहयोगी समितियाँ होती हैं, परंतु सामाजिक संस्थाओं में मीडिया प्रबंधन करना एक चुनौती भी रहता है। इसमें प्रेस कानूनों से लेकर संस्था के उद्देश्य, जनमानस की भावना, सही व सकारात्मक सूचनाएँ आदि कई बातों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है।

चतुर्थ अध्याय है—विषय-विशेषज्ञों एवं लाभार्थियों की राय। इस अध्याय में सामाजिक संस्थाओं के मीडिया प्रबंधन के प्रभाव व समस्याओं को ज्ञात करने के उद्देश्य से मीडिया क्षेत्र के विशेषज्ञों एवं संस्थाओं द्वारा लाभार्थी लोगों के विचारों को तथ्यात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक संस्थाओं का जो कार्यक्षेत्र होता है, वहाँ तक सूचना एवं जानकारी का समय पर पहुँचना ही उद्देश्य को सार्थक बनाता है। ऐसे में मीडिया प्रबंधन की प्रभावकारिता ही संस्था के कार्यों से लाभार्थियों का प्रतिशत निर्धारित करती है। यदि संस्था का मीडिया तंत्र प्रभावी है तो संस्था की कल्याणकारी योजनाओं का पूरे कार्यक्षेत्र में शत-प्रतिशत लाभ दिखाई देता है।

अध्ययन का **अंतिम अध्याय उपसंहार** के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें शोध आँकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों, शोध के महत्त्व, उपादेयता, सीमाएँ व सुझाव जैसे महत्त्वपूर्ण बिंदुओं की विवेचना की गई है। अपने शोध अध्ययन के निष्कर्ष के आधार पर शोधार्थी का मत है कि सामाजिक संस्थाओं में मीडिया प्रबंधन की भूमिका सकारात्मक और समय की आवश्यकता के रूप में देखी जा रही है। सामाजिक संस्थाओं के लक्ष्यों व विचारों को लोगों तक पहुँचाने तथा सामाजिक विकास व परिवर्तन के लक्ष्यों की प्राप्ति में मीडिया रणनीति अत्यंत प्रभावी एवं उपयोगी साबित हुई है। समाज हित में सामाजिक संस्थाओं के लिए ही नहीं अपितु सरकारी, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि संस्थाओं व संगठनों के लिए भी अपनी योजनाओं के प्रभावी परिणाम प्राप्त करने के लिए मीडिया प्रबंधन अत्यंत लाभकारी और उपयोगी सिद्ध होगा। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary --	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

नारी का सम्मान जहाँ है संस्कृति का उत्थान वहाँ है

भारतीय संस्कृति में नारी का उच्च स्थान रहा है, बल्कि उसे पुरुष से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। यह अकारण ही नहीं है। इसका आधार रहा है, उसका सृष्टि एवं जीवन की सृजनशक्ति के रूप में पुरुष से अधिक भावप्रवण एवं विशिष्ट होना। आश्चर्य नहीं कि भारतीय परंपरा में ईश्वरीय प्रवाह की शक्तिधाराओं को इनके युग्म में पहले स्थान दिया गया है, जैसे लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधा-कृष्ण आदि। इसी तरह कितने महापुरुषों के नाम माता के नाम से ही जोड़कर स्मरण किए जाते हैं, जैसे गंगापुत्र भीष्म, देवकीनंदन श्रीकृष्ण, कुंतीपुत्र अर्जुन आदि।

शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया कि **यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवता**—अर्थात जहाँ नारी की पूजा होती है, सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं। निस्संदेह भारत भूमि की गौरव गरिमा का आधार नारी शक्ति के प्रति इसी भाव की प्रधानता रही है। जब तक यह भावधारा सबल रही, राष्ट्र प्रगति के नित नए शिखरों का आरोहण करता रहा, सोने की चिड़िया कहलाया, जगद्गुरु के पद पर सुशोभित रहा। इसके 33 कोटि नागरिकों को 33 कोटि देवताओं की संज्ञा दी गई।

कालक्रम में नारी के प्रति इस भाव-प्रवाह के मंद पड़ते ही राष्ट्रीय जीवन की धारा भी अवरुद्ध-सी पड़ गई है। इसमें मध्यकाल का अंधेर युग एक लंबी निशा की भाँति आया, जिसमें विदेशी दासता के दौर में आक्रांताओं के अत्याचार से बचाव के लिए कई तरह की कुप्रथाओं का चलन शुरू हुआ, शास्त्रों में अपभ्रंश सम्मिलित हुए। सती प्रथा, घूँघट, बालविवाह जैसी कुप्रथाओं के कारण नारी का अस्तित्व चहारदीवारी के अंदर सिमटता गया। जिस नारी को पुरुष का पूरक माना जाता था, उसे हेय दृष्टि से देखा जाने लगा तथा उसकी भूमिका एक दोयम दरजे के नागरिक की रह गई।

19वीं से 20वीं सदी के सांस्कृतिक जागरण के दौर में नारी चेतना ने भी अँगड़ाई ली है। यह दौर वैश्विक स्तर पर भी नारी जागरण का रहा। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में नारीशक्ति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद इसमें नए आयाम जुड़ना प्रारंभ हुए। हालाँकि अभी स्थिति पूरी तरह से संतोषजनक नहीं कही जा सकती, लेकिन तब भी बहुत सुधार हो चुका है।

आज जीवन के हर क्षेत्र में महिलाएँ आगे आ रही हैं। हर वर्ष के स्कूली परिणाम बताते हैं कि लड़कियाँ लड़कों से बेहतर प्रदर्शन कर रही हैं। पुरुष के वर्चस्व प्रधान क्षेत्रों में नारी का पदार्पण हो चुका है। सेना हो या अंतरिक्ष या पौरुषप्रधान खेल, हर मोर्चे पर वह अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा रही है। हाल ही के कोविड काल के विषम दौर में नारीशक्ति ने स्वच्छता से लेकर चिकित्सा एवं सुरक्षा के मोर्चे पर उल्लेखनीय भूमिका निभाई है।

नारी अस्मिता एवं स्थिति से जुड़े कुछ स्याह पहलू भी हैं, जो अभी चिंता का विषय बने हुए हैं। आएदिन नारी के साथ घटने वाली हिंसा, अपराध एवं अत्याचार की घटनाएँ चिंतित करती हैं। रूह कँपाने वाली घटनाएँ आएदिन घटित होती रहती हैं, जो अभी भी समाज की दूषित सोच की चिंताजनक तस्वीर पेश करती हैं। इसमें विज्ञापन से लेकर मीडिया, प्रदूषित कलातंत्र एवं सर्वोपरि अपसंस्कृति के आक्रामक अतिक्रमण को दोषी माना जा सकता है, जिसने नारीशक्ति के प्रति सोच को विकृत एवं विषाक्त कर रखा है और वह व्यापक स्तर पर सुरक्षित नहीं है।

ऐसे में स्त्री के प्रति पुरुष मानसिकता को बदलने की आवश्यकता है। वह भोग की वस्तु नहीं, बल्कि ईश्वर की सम्माननीय एवं वंदनीय अनुपम कृति है, जो घर-गृहस्थी एवं समाज-परिवार की केंद्रीय धुरी है। नई पीढ़ी में श्रेष्ठ भाव एवं संस्कारों का रोपण एवं लालन-पालन उसी के गर्भ से लेकर गोद में होता है। सृजन एवं संवेदना की इस देवी के प्रति हर स्तर पर सम्मान एवं श्रद्धा के भाव रोपित करने की आवश्यकता है। साथ ही कन्याओं को बाह्य सौंदर्य की गुड़िया की तरह न सजाकर आंतरिक सौंदर्य के साथ शौर्य की प्रतिमूर्ति एवं ज्ञान की देवी के रूप में प्रशिक्षित एवं प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है।

संतानों में श्रेष्ठ विचारों एवं संस्कारों का रोपण इस दिशा में एक बड़ा कार्य है, जिसे हर अभिभावक को करना चाहिए। घर में कन्या से भेदभाव किसी भी तरह उचित नहीं। कन्या की विशिष्ट प्रकृति को समझते हुए उसे श्रेष्ठ मानते हुए लालन-पालन किया जाए। कोई कारण नहीं कि वह आगे चलकर एक श्रेष्ठ नागरिक के रूप में अपनी भूमिका निभाते हुए परिवार, समाज, राष्ट्र एवं मानवता के उत्कर्ष में अपना योगदान न दे सके।

घर-परिवार के बाद फिर स्कूल, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में ऐसा वातावरण तैयार करने की आवश्यकता है, जहाँ नारी के प्रति गरिमापूर्ण भाव एवं संस्कारों का बीजारोपण हो सके। आज के वातावरण को देखते हुए कार्य उतना सरल नहीं, लेकिन समझदार एवं जिम्मेदार शिक्षक गण इसमें अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं। शिक्षक अपने आचरण से छात्र-छात्राओं में ऐसे भावों का रोपण करें। उनको प्रेरक स्वाध्याय से जोड़ें, जो मन-मस्तिष्क के लिए श्रेष्ठ विचारों का खाद-पानी दे सके और अपने आचरण से ऐसा आदर्श प्रस्तुत करें, जो विद्यार्थियों को श्रेष्ठ मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे।

गृहस्थी में, दांपत्य जीवन में पत्नी को पहले से ही अर्द्धांगिनी का दरजा प्राप्त है। उसे उचित सम्मान एवं प्यार देते हुए आंतरिक रूप से भी सुदृढ किया जाए। भारतीय परंपरा में गरिमामयी ढंग से इस पावन रिश्ते को निभाने का विधान रहा है, जो गृहस्थ आश्रम में प्रवेश के समय हृदयंगम कराया जाता है। हर वर्ष विवाहोत्सव के दिन इसका पुनः स्मरण एवं नवीनीकरण किया जाए। एकदूसरे के प्रति वफादारी, आपसी समझ एवं सम्मान के साथ एक सुदृढ़ गृहस्थ जीवन की नींव रखी जा सकती है, जिसमें श्रेष्ठ संतान के निर्माण के उपयुक्त वातावरण तैयार हो सके।

परमपूज्य गुरुदेव ने ऐसे गृहस्थ को तपोवन की संज्ञा दी है, जिसमें संयम, सेवा और सहिष्णुता की साधना की जाती है। यही घर में स्वर्गोपम वातावरण का आधार है, जिसमें संस्कारवान पीढ़ियों के निर्माण के साथ नारी सशक्तिकरण का महत्तर उद्देश्य भी सहज रूप में पूरा हो सके।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी की ऋषि संतान होने के नाते उनके योग्य शिष्य, अनुयायी एवं उत्तराधिकारी के रूप में हमारा कर्त्तव्य बनता है कि श्रेष्ठ गृहस्थ के रूप में उनकी गरिमापूर्ण विरासत को अगली पीढ़ी तक हस्तांतरित करने का नैष्ठिक प्रयास करें, जिसके आधार पर उस इक्कीसवीं सदी—नारी सदी एवं उज्ज्वल भविष्य का पदार्पण होना है, जिसकी चौखट पर हम सब खड़े हैं। ❑

विख्यात वैज्ञानिक एल्बर्ट आइन्स्टाइन बर्लिन हवाई अड्डे से हवाई जहाज में सवार हुए। थोड़ी देर में उन्होंने माला निकालकर जपना शुरू कर दिया। उनके निकट बैठे युवक ने उनकी ओर हीनता से देखते हुए कहा—''आज का युग वैज्ञानिक युग है। आज दुनिया में आइन्स्टाइन जैसे वैज्ञानिक हैं और आप माला जप कर रूढ़िवाद को बढ़ावा दे रहे हैं।'' ऐसा कहकर उसने अपना कार्ड उनकी तरफ बढ़ाया और बोला—''मैं अंधविश्वास समाप्त करने वाले वैज्ञानिकों के दल का प्रमुख हूँ। कभी मिलने आइए।'' उत्तर में आइन्स्टाइन ने मुस्कराकर अपना कार्ड निकाला और उसे दिया। उनका नाम पढ़ते ही वह युवक हक्का-बक्का रह गया। आइन्स्टाइन बोले—''दोस्त! वैज्ञानिक होना और आध्यात्मिक होना, विरोधी बातें नहीं हैं। बिना आस्था के विज्ञान विनाश ही पैदा करेगा, विकास नहीं।'' युवक के जीवन की दिशा यह सुनकर बदल ही गई।

कोरोना काल में जीवन प्रबंधन

कोरोना काल ने जीवन की दुश्वारियाँ कई गुना बढ़ा दी हैं। एक ओर जहाँ हमारे सम्मुख इस अदृश्य एवं मायावी रोग से निपटने की चुनौती है तो वहीं दूसरी ओर लॉकडाउन से लेकर आइसोलेशन की स्थिति में घर की चहारदीवारी में सिमटा जीवन जले पर नमक छिड़कने की तरह बीच-बीच में अपनों से बिछड़ने का गम लिए हुए है। यह स्थिति विकट, चुनौतीपूर्ण एवं भयावह है। ऐसे विकट पलों में जब चारों ओर हताशा, निराशा, संशय, भय एवं अवसाद तथा पीड़ा के भाव घनीभूत हैं तो जीवन में सार्थकता एवं सकारात्मकता के भाव कैसे उभरें—इस पर विचार करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

जैसे जल की छोटी-छोटी धाराएँ मिलकर आगे एक बड़ी नदी का रूप ले लेती हैं—कुछ वैसे ही इन विकट पलों में जीवन की छोटी-छोटी खुशियों को बटोरकर एक बड़ी प्रसन्नता का आधार तैयार किया जा सकता है और प्रस्तुत जीवन की चुनौतियों से पार हुआ जा सकता है। जीवन प्रबंधन के सरल सूत्रों की समझ व अभ्यास इस उद्देश्य की पूर्ति में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। शारीरिक स्तर पर आहार-विहार का संयम—सुखी एवं प्रसन्न जीवन का पहला आधार है। समय पर सोने व जागने के साथ एक कसी दिनचर्या के आधार पर ही यह संभव होता है।

सूर्योदय से पूर्व सुबह उठने का अपना सुख है, जिसे कोई भी अनुभव कर सकता है, लेकिन यह रात को समय पर शयन के आधार पर ही सुनिश्चित हो पाता है। इसके साथ नित्य व्यायाम के साथ तैयार होता सबल शरीर सुखी जीवन का ठोस आधार तैयार करता है। पौष्टिक एवं मनभावन आहार स्वयं में मन को तृप्त एवं प्रफुल्लित रखता है, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। हालाँकि स्वाद के फेर में असंयमित आहार से बचना उचित होता है, जो अन्यथा तन-मन की सुख-शांति पर भारी पड़ता है।

गहरी नींद का टॉनिक अपना महत्त्व रखता है, जिसके बाद व्यक्ति तरोताजा एवं प्रसन्न अनुभव करता है। वहीं आधी-अधूरी नींद व्यक्ति को चिड़चिड़ा एवं तनावग्रस्त बनाती है। इसके साथ प्रकृति की गोद में विचरण जीवन की प्रसन्नता को बहुगुणित करता है। इसको अपनी स्थिति के अनुरूप घर के अंदर या बाहर यथासंभव दिनचर्या में शामिल किया जा सकता है।

मानसिक स्तर पर मन की सक्रियता और श्रेष्ठ चिंतन प्रसन्न जीवन का सबल आधार बनते हैं। इसमें कर्त्तव्य पालन सर्वोपरि है। अपने रोजमर्रा के कार्यों एवं कर्त्तव्यों का निर्वहन व्यक्ति को निश्चिंत एवं प्रसन्न रखते हैं; जबकि अपने परिवार, समाज या कार्यक्षेत्र के क्रियाकलापों में लापरवाही या कामचोरी गहरे अवचेतन में एक बोझ बन कर जीवन की प्रसन्नता का हरण करते हैं, जिनसे कि हमें सचेत रहने की आवश्यकता है। अपने कर्त्तव्यपालन के साथ रोज कुछ सार्थक एवं रचनात्मक कार्य प्रसन्नता के नए द्वार खोलते हैं।

प्रतिदिन कुछ नए कौशल का विकास करने से व्यक्तित्व का निखार आत्मविश्वास के साथ एक गहरी संतुष्टि देता है। इस प्रक्रिया में अपने जुनून का अनुसरण या अपनी पसंद के काम का जीवन की सार्थकता एवं आनंद से गहरा संबंध रहता है। इसके विपरीत बेगार की तरह किया गया कार्य जीवन को बोझिल बनाता है। प्रतिदिन अपने जीवन को समझने के लिए नियोजित समय सार्थक परिणाम लाता है, जिसके साथ जीवन की गहरी समझ विकसित होती है।

मोबाइल के वर्तमान युग में सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग जीवन की सुख-शांति पर डाका डालने वाला एक बड़ा माध्यम बना हुआ है; जबकि इसका संयमित एवं सृजनात्मक उपयोग अपार प्रसन्नता का आधार बन सकता है। वास्तव में मोबाइल एक जिन्न की तरह है, जिसका वरदान या अभिशाप इसके उपयोग या दुरुपयोग पर निर्भर करता है। इसी तरह सोशल मीडिया में समाचार के ऑवरडोज से बचना जरूरी होता है; क्योंकि आजकल

मीडिया में नकारात्मक एवं भ्रामक चर्चा अधिक रहती है, जो अनावश्यक तनाव व चिंता का कारण बनती है।

इसके साथ छोटी-छोटी चीजों का आनंद लेना सीखें। अच्छे गीत व संगीत मन को प्रफुल्लित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रेरक सद्वाक्यों को याद रखें, जो जीवन के संघर्ष के बीच आशा-उत्साह भरने वाले होते हैं एवं हर पल के साथी साबित होते हैं। व्यवहार में वाणी का सदुपयोग करें, प्रपंच से बचें; क्योंकि वाणी का दुरुपयोग मन की शांति को भंग करता है तथा दूसरों के मन में भ्रांति एवं मलिनता पैदा कर वातावरण को दूषित करता है। इसकी जगह सबके प्रति सद्भाव रखना एवं अपनी क्षमता भर जरूरतमंदों की मदद करना भी एक अनुकरणीय सूत्र रहता है।

दूसरों से तुलना करने से भी बचें। इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि अपने लक्ष्य पर सदा केंद्रित रहें। अच्छे लोगों की संगति करें। दूसरों के प्रति कृतज्ञता का भाव रखें। अपनी अंतर्वाणी का अनुसरण करें तथा लोग क्या सोच रहे हैं, इसकी अधिक परवाह न करें। अपने कर्त्तव्यपथ पर अडिग रहें और जो सही प्रतीत हो—उसका अनुसरण करें। दूसरों से इतना ही लगाव रखें कि बिछड़ने पर अनावश्यक पीड़ा व वेदना न हो।

अपना खरच बुद्धिमत्तापूर्वक करें और फालतू खरच से बचें अर्थात अर्थसंयम एवं मितव्ययता का अभ्यास करें। तनाव का प्रबंधन करना सीखें तथा समय का श्रेष्ठतम उपयोग करें। शारीरिक एवं मानसिक विकास के साथ अपने आत्मिक विकास के लिए भी सचेष्ट रहें। इसके लिए नित्य अपने लिए कुछ समय दें और अपनी आदतों पर छोटी-छोटी विजय प्राप्त करें। ध्यान के लिए कुछ समय अवश्य निकालें।

साधना, स्वाध्याय, संयम एवं सेवा को जीवन का अंग बनाते हुए मन को साधें। प्रतिदिन कुछ सार्थक करें तथा एक उद्देश्यपूर्ण जीवन जिएँ। चारों ओर की समस्याओं के समाधान में अपने ईमानदार प्रयास के साथ योगदान दें, लेकिन हर चीज को स्वयं के ऊपर न लें और इस प्रक्रिया में जो अपने वश में न हो, उसे भगवान पर छोड़ दें और सबके हित की प्रार्थना करते हुए उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त रहें। इसके साथ सरल, सुविधाभोगी जीवन के बजाय अनुशासित एवं श्रमशील जीवन का वरण करें।

इसके साथ-साथ यह भी जरूरी है कि हम अपने कम्फर्ट जोन से बाहर निकलें। अपने भय को पहचानें तथा एक-एक कर इन पर विजय पाएँ। अच्छा काम तुरंत करें, गलत काम 24 घंटे के लिए टाल दें। यह अभ्यास अवांछनीय कृत्यों से जुड़े पश्चात्ताप से बचाएगा। इसके साथ वर्तमान में जीवन जिएँ। अपनी कमियों, अधूरेपन व अपूर्णता को स्वीकार करें। समय श्रेष्ठतम चिकित्सक है—इस तथ्य को समझते हुए जीवन के असाध्य एवं लाइलाज पहलुओं को समय पर छोड़ दें। यदि कुछ समझ न आए तो शांत रहें।

द्रष्टाभाव से जीवन को देखने व समझने का प्रयास करें। इस तरह जीवन को हर स्तर पर छोटे-छोटे प्रयासों के साथ कसते हुए हर पल का सदुपयोग करते हुए आत्मसंतुष्टि एवं प्रसन्नता के छोटे-छोटे अवसरों को बटोरते हुए जीवन में सकारात्मकता एवं आशा का संचार किया जा सकता है और जीवन की प्रस्तुत चुनौती को धैर्यपूर्वक पार किया जा सकता है। ❑

संत ईसामसीह अपने शिष्यों के साथ जा रहे थे। उन्होंने राह में देखा कि एक गड़रिया अपनी एक भेड़ को बहुत प्यार कर रहा था। उसने उसे स्नेह से गोद में उठाया, फिर बहला-फुसलाकर ताजी हरी घास खाने को दी।

ईसामसीह ने गड़रिये से इस स्नेहातिरेक का कारण पूछा तो वह बोला—"प्रभु! यह भेड़ हमेशा रास्ता भटक जाती है। यों कहने को मेरे पास और बहुत-सी भेड़ें हैं, पर वे सीधे घर आती हैं। आज इसे इसीलिए प्यार दिया, ताकि यह फिर रास्ता न भटके।" ईसामसीह प्रसन्न होकर अपने शिष्यों से बोले—"राह से भटके हुओं को प्यार देकर ही राह पर लाना चाहिए।"

निरर्थक मनोरथों की पूर्ति की दौड़ में उलझते लोग

(श्रीमद्भगवद्गीता के दैवासुरसंपद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की तेरहवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के बारहवें श्लोक पर चर्चा इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी स्वभाव वाले व्यक्ति आशा की सैकड़ों फाँसियों में बँधे हुए काम-क्रोध के परायण होकर विषय-भोगों के लिए अन्यायपूर्वक धन संचय की चेष्टा करते रहते हैं। आशाओं को, उन आशाओं को जो व्यक्ति को ऐसा चिंतन प्रदान करती हैं कि यह कामना पूरी न हो सकी तो क्या, अगली अवश्य पूर्ण होगी—ऐसी आशाओं को भगवान श्रीकृष्ण फाँसियाँ कहते हैं; क्योंकि वे व्यक्ति को मारती भी नहीं हैं और व्यक्ति के गले में भी अनवरत पड़ी रहती हैं। वे कहते हैं कि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्यों के मन में विविध प्रकार की कामनाओं की पूर्ति की कल्पनाएँ सतत उठा करती हैं और उन्हीं की पूर्ति के लिए वे अनेक आशाएँ मन में सँजोकर बैठ जाते हैं। आज उनका मन एक विषय-भोग की पूर्ति के लिए मचलता है, तो कल कहीं दूसरी ओर को खिंचने लगता है। एक जगह आशा पूरी न हो पाए तो उनका मन परेशान होता है, पर तब तक वे किसी दूसरी जगह आशा लगाकर बैठ जाते हैं। इस तरह वे कभी भी आशाओं के बंधन से छूट नहीं पाते हैं। इसी को श्रीभगवान आशाओं की सैकड़ों फाँसियों का बंधन कहते हैं।

ये आशाएँ अपनी पूर्ति कराने के लिए फिर ऐसे व्यक्तियों को काम व क्रोध के बंधनों में डालती हैं। कामनाएँ पूरी न हो पाएँ तो क्रोध को जन्म देती हैं और पूरी हो जाने पर अभिमान को जन्म देती हैं। ऐसे में इन कामनाओं को पूरा कराने के लिए वे अनीति, अनुचित, अन्याय, अनाचार का सहारा लेने में संकोच नहीं करते हैं। विषय-भोगों को आवश्यकता से अधिक भोगने के लिए किसी-न-किसी कुपथ को अपनाना ही पड़ता है। इसलिए ऐसे आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य काम व क्रोध के वशीभूत होकर अनीतिपूर्वक धन-संग्रह की दौड़ में संलग्न हो जाते हैं। यह संपदा पाने की दौड़ उन्हें एक दिन मृत्यु के मुख पर लाकर खड़ा कर देती है, पर तब तक बहुत देर हो जाती है; क्योंकि हाथ में कुछ आता नहीं, परंतु जीवन भर अनीति, अन्याय से किए गए कर्मों का बोझ जरूर सिर पर आ जाता है। आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य यों ही अपने जीवन को गँवा बैठते हैं।]

ऐसा कहने के बाद श्रीभगवान आगे कहते हैं कि—

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥*13*॥

शब्दविग्रह—इदम्, अद्य, मया, लब्धम्, इमम्, प्राप्स्ये, मनोरथम्, इदम्, अस्ति, इदम्, अपि, मे, भविष्यति, पुनः, धनम्।

शब्दार्थ—मैंने (**मया**), आज (**अद्य**), यह (**इदम्**), प्राप्त कर लिया है (और अब)(**लब्धम्**), इस (**इमम्**), मनोरथ को (**मनोरथम्**), प्राप्त कर लूँगा। (**प्राप्स्ये**), मेरे पास (**मे**), यह (इतना) (**इदम्**), धन (**धनम्**), है (और) (**अस्ति**), फिर (**पुनः**), भी (**अपि**), यह (**इदम्**), हो जाएगा (**भविष्यति**)।

अर्थात ऐसे व्यक्ति सोचा करते हैं कि इतनी वस्तुएँ तो आज मैंने प्राप्त कर ली हैं और अब इस मनोरथ को भी मैं प्राप्त कर ही लूँगा। इतना धन तो मेरे पास है ही, अब इतना धन भी हो ही जाएगा। ध्यान से देखें तो श्रीभगवान इन सारे वचनों के माध्यम से इशारा ये ही कर रहे हैं कि आसुरी व्यक्ति बँधता क्यों है और दैवी संपदा से युक्त व्यक्ति मुक्त क्यों हो जाता है। श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी वृत्ति से

युक्त मनुष्य इसी दौड़ में उलझ जाता है—संपत्ति का संग्रह करना, बढ़ाना, इकट्ठा करना और फिर उससे भी संतुष्ट न होना।

यह जो दौड़ है, वह व्यक्ति को उलझाती ही जाती है। जिसके मन में यह लोभ, यह असंतोष भर जाता है, फिर उसे ज्यादा-से-ज्यादा धन भी कम ही नजर आता है। लोभी को, लालची को, संग्रही को-ज्यादा-से-ज्यादा धन भी कम ही लगेगा; क्योंकि उसके मन में संतोष नहीं है। इसके विपरीत संतोषी व्यक्ति को सदा लगेगा कि जो भी मेरे पास है, वह भी ज्यादा है—वह भी चला जाए तो कोई हर्ज नहीं। संतोषी सब कुछ खो करके भी खुश है और लोभी सब कुछ पाकर के भी दु:खी है।

प्रसिद्ध बोधकथा आती है कि एक नगर में एक लकड़हारा रहता था। बहुत धन उसके पास न था। रोज की रोटी के लिए रोज ही परिश्रम करना पड़ता था, पर उससे उसको कोई परेशानी न होती थी, उलटा वह उस परिश्रम को करके प्रसन्न ही रहा करता था।

एक दिन रानी ने उसको इतना प्रसन्नचित्त देखा तो राजा से कहा—"इस व्यक्ति के पास ऐसा क्या है, जिससे इतना खुश है?" राजा बोले—"यह परिश्रम करता है, संतोष में है। इसे धन दे दो तो यह परेशान हो जाएगा।" रानी को लगा कि ऐसा कैसे संभव है? धन मिलेगा तो खुश होएगा, परेशान क्यों होएगा?

रानी को सत्य का साक्षात्कार कराने के लिए राजा ने उस लकड़हारे के घर में एक सोने की अशर्फियों से भरी हाँडी रखवा दी। घर आने पर लकड़हारे ने देखा कि स्वर्ण से भरा एक बरतन घर में रखा है तो उसके उल्लास का ठिकाना न रहा। उसने तुरंत सारी अशर्फियाँ गिननी शुरू कीं तो वो 99 निकलीं। अब उसका मुँह लटक गया। उसे लगा कि 100 अशर्फियाँ होतीं तो कितना अच्छा होता।

अगले दिन से वो उस एक अशर्फी को कमाने की दौड़ में लग गया। धीरे-धीरे चेहरा सूख गया। मुख की कांति चली गई। चेहरे से मुस्कराहट-हँसी विदा हो गए। अब राजा ने रानी को याद दिलाया कि देखिए महारानी! यह वही लकड़हारा है, जो 1 पैसा कमाकर खुश रहता था और आज 99 के फेर में ऐसा अटका है कि खुश रहना भूल गया है।

आसुरी वृत्ति वाला मनुष्य कुछ इसी तरह की दौड़ में उलझ जाता है। उसका मन इन्हीं वस्तुओं को पाने की दौड़ में बँध जाता है। श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसी प्रवृत्ति वाले मनुष्य सोचते हैं कि आज इतनी वस्तुएँ तो प्राप्त कर ली हैं। कल इस शेष मनोरथ को भी पूरा कर लेंगे।

सत्य तो यह है कि वो कल कभी भी नहीं आता। ऐसा नहीं है कि इस बंधन से मात्र अमीर बँधते हैं, इस बंधन से वे भी बँध जाते हैं, जिनके पास धन अभी नहीं भी है। एक को जो मिला है, वो कम जान पड़ता है और दूसरा इस आशा में दौड़ा चला जा रहा है कि शायद कल मिल जाए। शाश्वत सत्य तो यह ही है कि जो अपने को जितना चीजों से जोड़ेगा, उतने गहरे बंधन में गिरेगा और जो अपने को जितना चीजों से तोड़ेगा, वह उतना ही मुक्त होएगा।

इस संसार में मार्ग दो ही हैं—पदार्थ का और चेतना का। एक पदार्थ को खोजने का, धन को इकट्ठा करने का, वस्तुओं के संग्रह का पथ है तो दूसरा चेतना में डूबने का, उसके परिष्कार का व उसके रूपांतरण का पथ है। पदार्थ का संग्रह—संसार में अटकाता है, बंधन का कारण बनता है और आसुरी वृत्ति वाले मनुष्यों की परिभाषा बनता है। चेतना के रूपांतरण का पथ मुक्ति का मार्ग है, परमात्मा तक पहुँचाता है और दैवी संपदा से युक्त व्यक्तित्वों के व्यक्तित्व को शोभायमान करता है।

सच पूछें तो धन की खोज, इन मनोरथों को पूरा करने की दौड़ बच्चों के खेल से ज्यादा नहीं है। बच्चे कंकड़-पत्थर इकट्ठा करके खुश होते हैं तो बड़े सिक्के और नोट इकट्ठे करके खुश हो जाते हैं। बच्चे गुड्डे-गुड़िया के संबंधों में रस लेते हैं तो बड़े होकर लोग अपने संबंधों में वो ही रस लेने लग जाते हैं। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक व्यक्ति ऐसे ही व्यर्थ की चीजों के पीछे भागता रहता है—बस नाम, रूप और आकार बदल जाते हैं।

यह दौड़, यह पागलपन मात्र तब समाप्त होता है, जब भीतर की यात्रा शुरू हो जाती है। जैसे ही हमारी चेतना बाहर के भटकावों को त्यागकर आंतरिक उपलब्धि की ओर बढ़ना आरंभ करती है, वैसे ही असली संपदा को पाने के अधिकारी हम बन जाते हैं। आसुरी वृत्ति वाले नकली संपत्ति के पीछे दौड़ते हैं और जीवन को भटकावों में उलझाते हैं तो वहीं दैवी वृत्ति वाले असली संपत्ति को अपना आभूषण बनाते हैं। (क्रमशः)

वर्षा से जुड़े कुछ रोचक तथ्य

बारिश के मौसम का सभी को इंतजार रहता है। गरमी की गहन तपन के बाद बारिश की फुहारें सभी के लिए राहत का सबब बनकर आती हैं। एक ओर इनसे जहाँ गरमी से राहत मिलती है तो वहीं मौसम भी खुशनुमा हो जाता है। बारिश के भी कई रूप होते हैं, जो विश्व के अलग-अलग हिस्सों में देखने को मिलते हैं। प्रस्तुत हैं इनसे जुड़े कुछ रोचक किस्से एवं तथ्य।

बारिश की बूँदें बनने व बरसने की प्रक्रिया भी रोचक होती है। पानी के वाष्प बादल का रूप लेते हैं और जब वे ठंढे होकर जम जाते हैं, तो पानी या बरफ के रूप में बरसते हैं। बादलों में अधिक पानी जमने के कारण पानी की बूँदें बड़ी हो जाती हैं और जब वे इतनी भारी हो जाती हैं कि बादलों में रुकी नहीं रह सकतीं, तो वे बारिश के रूप में धरती पर गिरती हैं और आसमान से बरसती प्रतीत होती हैं। बारिश की औसत गति 18 मील प्रतिघंटे की रहती है, जिसे 2500 फीट की ऊँचाई से धरती तक पहुँचने में मात्र 2 मिनट लगते हैं।

यह जानकर आप आश्चर्य करेंगे कि सबसे कम वर्षा कहाँ होती होगी। स्वाभाविक रूप से इसके नाम पर रेगिस्तान की कल्पना उठती है, लेकिन ऐसा रेत के रेगिस्तान के बजाय बरफ के रेगिस्तान अर्थात अंटार्कटिका में होता है। यहाँ वर्ष भर में मात्र 16.6 सेमी बारिश होती है। इसके साथ धरती पर कुछ स्थान ऐसे भी हैं, जहाँ बारिश होती तो है, लेकिन वह धरती तक नहीं पहुँच पाती। ऐसी घटना प्राय: रेगिस्तान में होती है, जहाँ बारिश की बूँदें आसमान में ही वाष्प बनकर उड़ जाती हैं। अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और अफ्रीका के अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में ऐसा कुछ होता है।

बारिश की बूँदें पानी से ही बनी हों, ऐसा जरूरी नहीं। कई बार ये तेजाब से भी बनी होती हैं, यहाँ तक कि धातुओं की भी बनी हो सकती हैं। इसी के साथ बारिश के रंग भी चौंकाने वाले पाए गए हैं। खून की बारिश सुनकर आप चौंक सकते हैं। मिट्टी और माइक्रो ऑर्गेनिज्म मिलकर पानी के रंग को लाल बना देते हैं, लगता है कि जैसे खून की बारिश हो रही हो। बोगोटा, कोलंबिया में भी ऐसी बारिश होने का दावा किया गया है।

दूध की बारिश की बात भी चकित कर सकती है। अमेरिका के दो राज्य ऑरेगन व वाशिंगटन के 300 किलोमीटर दायरे में फैले 15 शहरों में दूधिया बारिश होती पाई गई, जो बाद में वाहनों एवं खिड़कियों में सफेद चाक की राख के रूप में अवशेष छोड़ गई। विशेषज्ञ अनुमान लगाते रहे कि इसका कारण क्या हो सकता है।

पहले इसका कारण जापान में किसी ज्वालामुखी से निकले धुएँ तथा जंगली आग के धूल आदि को माना गया। लेकिन बाद में खोज करने पर इसका स्रोत 772 किमी दूर एक झील निकली, जिसकी उथली-सूखी तली से यह उठी थी। इसी तरह हलदिया में हरी बारिश लोगों के लिए चिंता का विषय रही, जो तेजाबी बारिश निकली। इसका पानी इकट्ठा करने पर बाद में सूखने पर नीली धूल हाथ लगी, जिसका प्रमुख कारण प्रदूषण पाया गया। जहाँ अधिक प्रदूषण था, वहाँ इस नीली बारिश का प्रकोप अधिक रहा।

इसके अतिरिक्त बारिश के कुछ ऐसे भी विचित्र घटनाक्रम मिले हैं, जहाँ मछली, मेंढ़क व अन्य जीवों की बारिश होती पाई गई। बारिश के साथ जीव-जंतुओं का गिरना एक मौसमी घटना है, जिसमें पंखरहित जीव आसमान से गिरते हैं। ऐसी घटनाएँ कई देशों में घटित होती रहती हैं। इसके पीछे मुख्य कारण जलस्तंभीय बवंडर (टोर्नेडिक वाटरस्प्राउट) माना जाता है, जो मछलियों से लेकर मेंढ़क व अन्य जीवों को अपने साथ समेटकर कई मील ऊपर एवं दूर तक ले जाता है एवं बाद में किसी दूसरे स्थान पर बारिश के रूप में आसमान से टपका देता है। इस बवंडर की गति 160 किलोमीटर प्रतिघंटा तक हो सकती है, जिसमें दबाव कम पड़ने पर पहले भारी चीजें गिरती हैं और फिर हलकी। इस तरह इसमें टँगे एक प्रकार के जीव एक साथ धरती पर गिरते पाए गए हैं।

सन् 2009 में जापान के इशिकावा इलाके में मछली, मेंढ़क और टेडपोल जहाँ-तहाँ छत पर, खेतों में, मैदान में पाए गए? हर कोई हैरान था कि ये जलीय जीव यहाँ-कहाँ

से आ गए। निष्कर्ष यह निकला कि जल-बवंडर इन जीवों को साथ में खींचकर लाया होगा और जैसे-जैसे यह बवंडर धरती व जलीय क्षेत्र से आगे बढ़ता गया, यह जलीय जीवों को साथ में समेटता गया और वायुमंडल में आगे बढ़ते हुए, अंतत: दूरवर्ती स्थानों पर बारिश के रूप में इनको बरसाते हुए लोगों को आश्चर्यचकित करता रहा।

मध्य अमेरिका के होंडुरस इलाके में मछलियों की बारिश लगभग हर साल होती है। स्थानीय लोगों का कहना है—पिछले लगभग 100 सालों से ऐसी घटना साल में एक बार अवश्य होती है। इस कारण यहाँ के लोग डे लुविआ-डे पीसेस नाम का उत्सव भी मनाने लगे हैं। सन् 2012 में दक्षिणी कैलिफोर्निया में सैन जुआन हिल्स गोल्फ क्लब के आस-पास एक के बाद करीब 30-40 शार्क मछलियाँ आकर गिरी थीं। बाद में लोगों ने इन्हें उठाकर वापस पानी में डाल दिया। कारण पता न चल सका कि ये एक साथ कैसे आ टपकीं। ऑस्ट्रेलिया में मकड़ियों की बारिश भी सुनने में आई है। इसी तरह ब्राजील, अर्जेंटिना में भी इनकी बारिश हो चुकी है। ऐसा कई बार हो चुका है, जिसका वैज्ञानिक कारण अभी तक ज्ञात नहीं हो पाया है।

बारिश का ओलों के रूप में बरसना भी आम बात है, लेकिन इनके आकार कई बार इतने बड़े होते हैं कि ये चर्चा का विषय बन जाते हैं। खरबूजे के आकार के ओले तक कई बार बरसते देखे गए हैं। ऐसे गोले अमेरिका के साउथ डेकोटा में 2010 में कई बार गिरे थे, जो इतिहास के सबसे बड़े ओले माने जाते हैं, जिनका आकार आठ इंच तक का था। यदि ये किसी व्यक्ति पर गिरते तो उसे घायल कर देते। इनके कारण कई गाड़ियों को भारी क्षति हुई थी।

इस तरह बारिश एक सुखद एहसास ही नहीं लेकर आती। कुछ प्राकृतिक कारणों से तो कुछ मानवीय हस्तक्षेप के चलते, ऊपर बताए गए बारिश के विचित्र स्वरूप भी यदा-कदा प्रकट होते हैं, जो कुछ चकित करते हैं, तो कुछ मानव को सुधरने की शिक्षा देकर चले जाते हैं। जो भी हो ऐसी घटनाएँ सबको सोचने-विचारने के लिए मजबूर तो कर ही देती हैं। ❑

एक प्रसिद्ध सूफी संत थे। उनके बारे में मान्यता थी कि वे किसी भी व्यक्ति से मिलते ही एक बार में उसके मनोभाव भाँप लेते थे। एक बार एक फकीर उनसे मिलने आए। उनसे मिलते ही उन्होंने कहा—"सूप आ गया।" कुछ देर पश्चात राज्य का सबसे धनी व्यक्ति उनसे मिलने आया तो वे बोले—"यह तो चलनी है।" पास खड़े उनके शिष्य ने उनके दोनों वक्तव्य सुने।

उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि आज उनके गुरु ने दो व्यक्तियों के विषय में ऐसी अभद्र टिप्पणी क्यों दी ? संकोच करते हुए उसने संत से अपनी जिज्ञासा प्रकट की तो वे बोले—"बेटा! संसार में दो तरह के लोग हैं, एक वो, जो सूप की तरह बेकार की वस्तुओं को त्यागकर सारयुक्त तत्त्वों को ग्रहण करते हैं और दूसरे वो, जो चलनी की तरह काम की वस्तुओं को छोड़कर बेकार की वस्तुओं को स्वीकार करते हैं।" शिष्य की समझ में आ गया कि कामिनी-कांचन का त्याग कर परमात्मतत्त्व को ग्रहण करने वाले फकीर को सूप और परमात्मा से विमुख होकर सांसारिक भोग्य पदार्थों को ग्रहण करने वाले धनी व्यक्ति को क्यों उनके गुरु ने चलनी कहा।

जनचेतना ही जल संस्कृति को बचा पाएगी

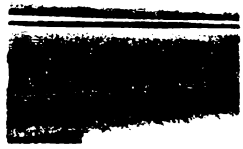

देश इस समय एक भीषण जल संकट को झेल रहा है। मध्य प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र, राजस्थान और तेलंगाना जैसे 21 बड़े राज्य पिछले कई सालों से भीषण जल संकट का सामना कर रहे हैं। इन राज्यों में महाराष्ट्र और राजस्थान की स्थिति तो काफी चिंताजनक है। महाराष्ट्र के लातूर जिले की स्थिति तो पिछले कई वर्षों से यह हो जाती है कि वहाँ कुएँ, ट्यूबवेल और टैंकरों के आस-पास बाकायदा धारा 144 लगाकर पाँच से ज्यादा लोगों के इकट्ठा होने पर रोक लगा दी जाती है। राजस्थान में लोग रात में पानी रखे स्थान पर ताला भी लगाने लगे।

देश में इस समय 741 जिलों में से 400 से भी ज्यादा जिले सूखे की चपेट में हैं। पानी की कमी से जुड़े लोग साक्षी हैं कि देश में दो लाख लोगों की मृत्यु साफ पानी की कमी के चलते हो जाती है। ये स्थितियाँ बताती हैं कि जल का प्राकृतिक चक्र टूट गया है और अब उससे आम जीवन भी प्रभावित होने लगा है। इस चक्र के बिगड़ने से धरती की गरमाहट भी लगातार बढ़ रही है। यह इसी का दुष्परिणाम है कि हिमालय पर भी ग्लेशियरों के पिघलने की खबरें तेजी से आ रही हैं। इस समय जल संकट भीषण है और इससे उबरने के लिए एक गंभीर प्रयास जरूरी है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जल संकट से उबरने के ऐहतियाती उपाय न करने के कारण ही जल के लिए विभीषिका जैसी स्थिति पैदा हो गई है। सच्चाई यह है कि जल के संकट की यह घटना प्राकृतिक आपदा की तुलना में मानवीय कुप्रबंधन और हमारे द्वारा जल संग्रहण की संस्कृति को विकसित न करने का परिणाम अधिक है। पिछले पाँच दशकों का इतिहास साक्षी है कि इस प्रकार के जल संकटों से निबटने के लिए सरकारों ने राहत कार्यों के तदर्थवाद से प्रभावित होकर रोग पर सतही मरहम तो लगाया, परंतु जल संकट जैसी आपदा से निबटने के स्थायी समाधान ढूँढ़ने के प्रयास नहीं किए।

आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि इस पृथ्वी पर पर्याप्त मात्रा में जल होने के बावजूद लोग प्यास से तड़प रहे हैं। पृथ्वी की दो-तिहाई सतह पानी से ढकी है और इसका मात्र एक-तिहाई भाग ही भूमि के रूप में है। इस धरती के कुल जल भंडार का 97 फीसद भाग समुद्र है। यहाँ पृथ्वी के कुल जल का 3 फीसद भाग विभिन्न स्रोतों से आता है। सामान्यत: भूजल का यही भाग साफ पानी कहलाता है। इसके अलावा दो-तिहाई पानी ग्लेशियर हिमाच्छादित पहाड़ों और नदियों से मिलता है। इस जल के कुप्रबंधन से ही जल संकट उत्पन्न होता है।

पिछले पाँच दशकों में विकास के आयातित मॉडल के तहत नगरों के विकास पर ही अधिक ध्यान देने से लोगों का गाँव से बाहर की ओर पलायन तेज हुआ है। पलायन की इस तीव्रता ने गाँवों की अर्थव्यवस्था को ही चौपट नहीं किया, बल्कि इससे ग्रामीण संस्कृति भी बुरी तरह से प्रभावित हुई है। इसलिए यहाँ यह कहना प्रासंगिक होगा कि विकसित देशों का आधुनिकीकरण करने से अपने देश में भी उपभोग की आक्रामक प्रवृत्ति बढ़ी है; जिससे जल के असमान उपभोग और उसके दुरुपयोग को भी बल मिला है। इस बाहरी संस्कृति के आक्रामक उपभोग ने तो गाँव की जल संस्कृति को भी अपनी चपेट में ले लिया है।

जल संरक्षण से जुड़े शोध अध्ययन बताते हैं कि एक व्यक्ति को वर्ष में औसतन 1700 घनमीटर से भी अधिक जल की आवश्यकता होती है। यदि व्यक्ति के लिए जल की उपलब्धता 1000 घनमीटर से नीचे चली जाती है तो यह मान लिया जाता है कि वहाँ पानी का अभाव हो चला है। पानी के उपभोग का यही गणित जब 500 घनमीटर से भी नीचे चला जाता है तो उस क्षेत्र में जल-अकाल जैसे लक्षण पैदा होने लगते हैं। पिछले दिनों राजस्थान, गुजरात, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा एवं उत्तर प्रदेश में जब सूखे जैसी स्थिति उत्पन्न हुई थी तो वहाँ प्रतिव्यक्ति जल की उपलब्धता 400 घनमीटर से भी नीचे चली गई।

आँकड़े बताते हैं कि सन् 1951 में पेयजल की प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति उपलब्धता 5177 घनमीटर थी, जो पिछले छह दशकों में घटकर 1150 घनमीटर रह गई है। यदि जल की उपलब्ध मात्रा के घटने का यही हाल रहा तो आने वाले दशकों में देश के अधिकांश हिस्से सूखे की गिरफ्त में आ जाएँगे। पिछले कई वर्षों के आकलन के आधार पर ग्रीनलैंड की 'रिपोर्ट 2047' ने तो आने वाले दशकों में जल संकट की विस्फोटक स्थिति की ओर संकेत किया है। इस जल संकट का एक आश्चर्यजनक पहलू यह भी है कि भारत में प्रतिव्यक्ति जल की उपलब्धता 1200 घनमीटर के आस-पास होने के बावजूद यहाँ जल संकट जैसी त्रासदी से गुजरना पड़ रहा है।

जिन प्रदेशों में आज जल का संकट है, वहाँ जल के निरंतर दोहन से आज जलस्तर 500 फुट से लेकर 1500 फुट नीचे तक चला गया है। निश्चित ही यह हमारे पिछले पाँच-छह दशकों में भूजल के मनमाने दोहन का ही नतीजा रहा है। 70 के दशक के बाद ट्यूबवेल लगाने की खुली छूट, पाँच सितारा होटलों एवं विस्तारित कॉलोनियों का निर्माण तथा महानगरों व नगरों के फैलाव इत्यादि से भूजल का बहुत अधिक दोहन हुआ है। चार दशक पश्चात उसी का नतीजा आज गंभीर जल संकट के रूप में हमारे सामने है।

इसके अतिरिक्त गहराते जल संकट के लिए वनों की कटाई भी कम उत्तरदायी नहीं है। देश की आजादी के बाद जब-जब देश में सूखा पड़ा है, तब-तब उससे करोड़ों लोग प्रभावित हुए हैं। साथ ही उससे देश की अर्थव्यवस्था भी प्रभावित हुई है। सरकारों द्वारा पेयजल आपूर्ति हेतु राष्ट्रीय स्तर पर जलनीति बनाकर अरबों-खरबों रुपयों की योजना बनाई गई, परंतु पेयजल संकट आज भी हमारे सामने मुँहबाए खड़ा है। इस जल संकट से छुटकारे के लिए आखिर हमें जल संग्रहण की अपनी स्वदेशी परंपरागत संस्कृति और उसके मितव्ययी उपयोग की ओर ही लौटकर आना पड़ेगा।

गौरतलब है कि वर्ष के कुल 8760 घंटों में से मात्र 100 घंटे ही बरसात होती है। आज की हमारी सारी परेशानी इन 100 घंटों के पानी का विधिवत् संग्रहण, प्रयोग और प्रबंधन न करने को लेकर ही है। जल संग्रहण और उसके कम खरच की प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए 330 एकड़ में फैले राष्ट्रपति भवन के साथ-साथ देश के अन्य बड़े भवनों आवास-विकास परिषदों और विकास प्राधिकरणों के लिए बारिश के पानी को एकत्रित करने हेतु परंपरागत जल संग्रहण की योजनाएँ तैयार की गई हैं। ऐसे प्रयास अन्य जगह भी करने की आवश्यकता है।

इसके साथ-साथ जल संग्रहण के परंपरागत तौर-तरीकों को बढ़ावा देने के लिए केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय ने भी तमाम योजनाएँ तैयार करते हुए देश के कई प्रदेशों में जल संग्रह करने के ढाँचों को विकसित करने के लिए अधिक-से-अधिक अनुदान देने का प्रावधान रखा है। आखिरकार जल संग्रहण के ये सभी परंपरागत तरीके हमारी संस्कृति से पहले से ही जुड़े हैं, परंतु हमने अपनी उपभोगी और बाजारू संस्कृति के सामने इन्हें अनुपयोगी समझकर छोड़ दिया है।

जल के दुरुपयोग से हम भौतिक स्वच्छता का सही ढंग से निर्वाह नहीं कर सके और जल संग्रहण के लिए मन से हम लापरवाह ही बने रहे। आज का यह जल संकट भी

अनुशासन जीवन जीने का एक निश्चित और नियमित तरीका है, जिसमें मनुष्यों का रहन-सहन, खान-पान, चाल-ढाल, बातचीत करना, काम करना सभी व्यवस्थित और सुंदरतापूर्ण होते हैं।

हमारे आधुनिक होने की ललक, लापरवाही और कृत्रिम जीवन जीने का ही नतीजा है। अब यह जल और अधिक उपेक्षा सहने की स्थिति में नहीं है। नदियों की कलकल बंद होने से नदी संस्कृति टूट गई है। वायु को प्रदूषित करने से उसके घातक परिणाम हम झेल ही रहे हैं। भूमिगत जल को बचाने के लिए जहाँ सरकारी नीति के जरिए जल सप्ताह मनाने की जरूरत है तो वहीं दूसरी ओर जल के उचित प्रबंधन करने के व्यावहारिक उपायों को अपनाने की भी जरूरत है।

आज मानवीय व्यवहार में जल संस्कृति को पुनर्जीवित करना और उसे समृद्ध बनाना एक ज्वलंत माँग है। जल के बचाव और उसके रखरखाव के जरिए हम जल संरक्षण की संस्कृति को विकसित करें, तभी उसकी सार्थकता को सिद्ध करने में कामयाब हो पाएँगे। ❑

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी – 1

वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता

(पूर्वार्द्ध)

परमपूज्य गुरुदेव अपने महत्त्वपूर्ण उद्बोधन में सभी श्रोताओं और साधकों को यह स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मनुष्य के जीवन में दो तरह की माताओं का आगमन होता है। एक माँ तो वो होती है, जो हमारे शरीर के पोषण की व्यवस्था बनाती है। हमें शारीरिक सुरक्षा, भावनात्मक विकास, आत्मीयता, अपनत्व एवं सामाजिक संरक्षण इसी माँ के माध्यम से प्राप्त होता है। परमपूज्य गुरुदेव कहते हैं कि इसके अतिरिक्त हमारी एक माँ वो भी है, जो हमें आत्मिक दृष्टि से पोषण प्रदान करती है। वर्षों पहले उसी के माध्यम से प्राप्त ज्ञान, शिक्षाओं एवं सद्गुणों के सूत्रों ने भारत को जगद्गुरु के पद पर आसीन किया था। उन्हीं ने भारत में वैश्विक परिवार एवं वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव विकसित किया था। उनका नाम गायत्री माता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

मातृ देवो भव

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

देवियो, भाइयो! माता को संसार का प्रत्यक्ष देवता माना गया है और उसको पहला नंबर दिया गया है। कहा गया है—"**मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव।**" देवताओं में सबसे पहला देवता माता को माना गया है। क्यों? क्योंकि माता के असीम उपकार हैं। माता जितना उपकार कर सकती है, सारी दुनिया के सारे संबंधी मिलाकर उतना उपकार नहीं कर पाते हैं। माता बच्चे को नौ महीने अपने पेट में रखती है। कौन रखेगा पेट में? छाती का लाल रंग का खून दूध में बदलकर के पिलाती है। कौन पिला देगा अपना खून?

माता चौबीस घंटे की नौकरानी है, जो बच्चे की टट्टी धोने से लेकर सफाई करने तक और पेशाब धोने से लेकर छाती से लगाने एवं सोने तक चौबीसों घंटे नौकरी करती है। कौन करेगा ऐसी नौकरी? इतना दुलार और इतना प्यार कर सकती है हमारी माँ। इसीलिए माता को देवता बताया गया है। माता को इस संसार का सबसे पहला देवता बताया गया है।

मित्रो! हम भगवान की प्रार्थना करते हैं। भगवान से रिश्ता बनाते हैं तो पहला रिश्ता माता का बताते हैं। दूसरा पिता का बताते हैं। क्यों बताते हैं? माता का उपकार, माता की सेवाएँ और कोई नहीं कर सकता। छोटी-सी पानी की बूँद को एक हट्टा-कट्टा मनुष्य बना देने की, विचारों की दृष्टि से, भावनाओं की दृष्टि से समर्थ बना देने की जो क्षमता माता में है, वह और किसी में है ही नहीं। इसके लिए माता का गुण गाते हैं, माता का उपकार मानते हैं। माता को हम प्रणाम करते हैं। भौतिक जीवन में माता को महत्त्व देते हैं। माता की बात हम बहुत कुछ समझते हैं और माता की महिमा गाते-गाते थकते भी नहीं हैं। हम चाहे उपकार मानें या न मानें, किंतु इससे उसके उपकार में कोई अंतर नहीं आता।

आत्मा का परिपोषण करती है गायत्री माता

मित्रो! हमारी एक और माता है, जिसके बारे में आपकी जानकारी कम है, लेकिन वह माता हमारे शरीर को जन्म देने वाली माता से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। हमारा

शरीर कीमती है, लेकिन एक और भी चीज कीमती है। उसका नाम है—आत्मा।

आत्मा और भी ज्यादा कीमती है और हमारी आत्मा का परिपोषण करने वाली, आत्मा को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने वाली, आत्मा को समुन्नत बनाने वाली एक और शक्ति है, जिसके बारे में हम और आप कम जानते हैं, लेकिन इतना होते हुए भी इसकी गरिमा और महिमा में कोई कमी नहीं आती। वह कौन है ?

वह एक माता है, जिसको ऋषियों की भाषा में गायत्री माता कहा गया है। दार्शनिकों की भाषा में ऋतंभरा प्रज्ञा कहा गया है। समाजशास्त्रियों, नीतिशास्त्रियों की दृष्टि में इसको दूरदर्शिता कहा गया है, आदर्शवादिता कहा गया है, उत्कृष्टता कहा गया है, शालीनता कहा गया है। उसके बहुत सारे नाम हैं, जिसको मैं गायत्री माता कहता हूँ।

मित्रो! वह एक ऐसी माता है, जो हमारी आत्मा को दूध पिलाती है। आत्मा को दूध पिलाने से दुनिया में न जाने क्या-से-क्या हो जाता है और क्या-से-क्या हो सकता है। शरीर को दूध पिलाने से, घी खिलाने से, प्रोटीन खिलाने से आदमी पहलवान हो जाते हैं, बलवान हो जाते हैं और न जाने क्या-से-क्या हो जाते हैं, लेकिन आत्मा को यदि किसी के लिए दूध मिलना संभव बन सके तो आत्मा बहुत पहलवान हो जाती है। ऐसी पहलवान, ऐसी मजबूत, ऐसी सुसंस्कृत, ऐसी समुन्नत हो जाती है कि आदमी फिर आदमी नहीं रह जाता—आदमी फिर देवता बन जाता है।

इनसान कैसे बनता है देवता ?

देवता? हाँ बेटे, देवता बन जाता है। आदमी का वजन, आदमी की तौल, आदमी का मूल्य बढ़ जाता है। लोग आदमी की बाहर की चीजों को मूल्यांकन, नाप-तौल तो करते हैं, पर यह नाप-तौल करना गलत है। आदमी की सेहत की दृष्टि से लोग समझते हैं कि यह चंदगीराम पहलवान है और बड़ा मजबूत है। किसी की संपत्ति के साथ लोग अंदाज लगाते हैं कि ये बड़े आदमी हैं, संपन्न आदमी हैं। किसी की अक्ल के हिसाब से अंदाज लगाते हैं कि इनकी अक्ल बड़ी पैनी है और ये इंजीनियर हैं, ये वैज्ञानिक हैं, अमुक हैं, तमुक हैं। लोग इन पहलुओं को देख करके आदमी के वजन का और मूल्य का अनुमान लगाते रहते हैं, पर यह मूल्यांकन गलत है।

मित्रो! असल में आदमी का मूल्य और आदमी का वजन उसके भीतर रहता है। बाहर की चीजों से कोई ताल्लुक नहीं रखता है। जिनको हम जानते हैं और जिनको हम नहीं जानते हैं, असल में आदमी का वजन वह है। आदमी की तौल वह है। गांधी जी 100 पौंड के थे और लंबाई में 5 फुट 2 इंच के थे, लेकिन उनका भीतर वाला हिस्सा, जिसको अंतरात्मा कहते हैं, इतना भारी, इतना वजनदार,

अंधकार ने उजाले से पूछा—"क्यों भाई उजाले! मैंने तुम्हारा बहुत नाम सुना है, पर कभी हमारी-तुम्हारी मुलाकात नहीं हो पाई है, ऐसा क्यों ?"

उजाले ने हँसकर उत्तर दिया—"मित्र! तुम भी तो मेरा ही एक रूप हो, जहाँ मैं नहीं हूँ, वहीं पर तो तुम हो।"

सत्य यही है कि निराशा और अंधकार की अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं, जैसे ही प्रकाश और उत्साह के कदम पड़ते हैं, अंधकार अपना साम्राज्य हटाने को विवश होता है।

इतना मूल्यवान था कि हम क्या कह सकते हैं। एक दिन हंटर लेकर ब्रिटेन के शेर को चैलेंज देते हुए—'क्विट इंडिया' हिंदुस्तान छोड़िए, का उद्घोष करते हुए सीना तानकर खड़े हो गए। जिस तरीके से सरकस का रिंगमास्टर हंटर ले करके खड़ा हो जाता है और शेर से लेकर हाथी तक काँपने लगते हैं और उसके इशारे पर चलते रहते हैं। ब्रिटेन का शेर

बिस्तर बाँधकर चला गया। यह कौन-सी ताकत थी? यह वह ताकत थी, जिसका मैं अभी आपसे जिक्र कर रहा हूँ। वह है—आदमी के भीतर वाला हिस्सा। आप चाहें तो उसको अंत:करण कह सकते हैं, अंतरात्मा कह सकते हैं। जो भी चाहे कह सकते हैं।

अंत:करण की ताकत

मित्रो! आदमी के भीतर वाली एक सत्ता है, जिसके बारे में आदमी कम जानते हैं। कम जानते हुए भी उसका वजन और उसकी बकत का मूल्य अपने आप में महान था और महान ही बना रहेगा। भीतर वाला हिस्सा क्या है? बाहर वाली जिंदगी क्या है? एक पेड़ है, दरख्त है। उसके ऊपर फल आते हैं, पत्ते आते हैं, फूल आते हैं, कलियाँ आती हैं, लेकिन असल में जो पेड़ का बाहरी कलेवर दिखाई पड़ता है, वह उसकी जड़ों से प्राप्त होता है।

जड़ें जितनी गहरी हैं, जड़ें जितनी मजबूत हैं, जड़ें जितनी लंबी हैं, उसी हिसाब से दरख्त लंबा होता चला जाएगा। बरगद का पेड़ बहुत बड़ा मालूम पड़ता है, लेकिन आप जड़ों की जमीन में खुदाई करें, तो मालूम पड़ेगा कि जितना बड़ा पेड़ ऊपर था, उतना ही बड़ा नीचे भी है। आदमी भीतर से बढ़ता है। आदमी भीतर से समुन्नत होता है।

मित्रो! नेपोलियन से लेकर के जॉर्ज वाशिंगटन तक, हिंदुस्तान में भगवान बुद्ध से लेकर के स्वामी विवेकानंद तक हर आदमी के भीतर वाला हिस्सा मजबूत था। भीतर वाला हिस्सा ताकतवर था। भीतर वाला हिस्सा बढ़ा-चढ़ा था। यही कारण था कि वे अपने बहिरंग जीवन में भी फलते-फूलते चले गए, सफल होते चले गए, समुन्नत होते चले गए। जिनका भीतर वाला हिस्सा कमजोर होता है, वे हवा के एक झोंके से गिर पड़ते हैं और तहस-नहस हो जाते हैं। जिनके पास सेहत है, मान लीजिए किसी भी वजह से भगवान न करे बीमार हो जाएँ, लकवा हो जाए, तो आप देखते हैं न कि क्या हालत हो जाती है। जो घरवाले कल तक उसकी प्रशंसा करते थे, दोस्त प्रशंसा करते थे, आज कहते हैं कि यह आदमी मर जाए तो अच्छा है। आदमी की अक्ल बहुत अच्छी है, लेकिन अगर कोई एक बोल्ट ढीला पड़ जाए, तो आदमी पागल कह दिया जाता है।

मित्रो! व्यापार आपके पास है, पैसा आपके पास है, लेकिन एक मुकदमा लग जाए, झगड़ा लग जाए, कोई और मुसीबत आ जाए तो सारा पैसा गायब हो जाता है। आपने जागीरदारों को, राजाओं को देखा नहीं। राजा आपको दिखाई नहीं पड़ते, जागीरदार आपको दिखाई नहीं पड़ते, सेठ आपको दिखाई नहीं पड़ते। पता नहीं हवा के एक झोंके से कहाँ चले गए।

ये सब बाहर के लिफाफे हैं। ये सब कमजोर हैं। भीतर वाला हिस्सा मजबूत है। उसी से आदमी की बकत बढ़ती है, इज्जत बढ़ती है, मूल्य बढ़ता है। उसी से आदमी की सामर्थ्य आँकी जाती है। उसी से आदमी की शक्ति का मूल्यांकन होता है। यह भीतर वाला हिस्सा है। मैं आपको भीतर वाले हिस्से की बाबत इसलिए कह रहा था कि उसको दूध पिलाने वाली शक्ति, उसको मजबूत बनाने वाली शक्ति, उसको परिष्कृत और सुसंस्कृत बनाने वाली एक शक्ति है, जिसको हमारे बुजुर्ग जानते थे और हम भूल गए।

मित्रो! हमारे पूर्वज क्या जानते थे? वे जानते थे कि एक हमारी माँ है, जिसको हम देवमाता कहते हैं, वेदमाता कहते हैं, विश्वमाता कहते हैं। तीन माताएँ कहते हैं, जिनका दूध पीकर के किसी जमाने में हर इनसान देवता था। हिंदुस्तान में तैंतीस करोड़ के करीब नागरिक रहते थे। हिंदुस्तान उन दिनों बहुत बड़ा था। इंडोनेशिया से शुरू होता था और अरब देशों और अफगानिस्तान तक चला जाता था। राजा हर्षवर्धन अफगानिस्तान के थे और अरब देशों तक उनका राज्य था और कहाँ-कहाँ था? इंडोनेशिया तक आप चले जाइए। बर्मा से लेकर के जावा तक चले जाइए।

पुरानी स्थिति देखते चले जाइए। पुरानी इमारतें देखते चले जाइए। आपको ऐसा मालूम पड़ेगा कि हिंदुस्तान में घूम रहे हैं। आपको पुरानी हर चीज यह बताएगी कि यह हिंदुस्तान है। तब हिंदुस्तान बहुत बड़ा था। किसी जमाने में विशाल भारत देवभूमि और विशाल भारत के नागरिक देवता कहलाते थे। सारी दुनिया तो बड़ी लंबी-चौड़ी है, भारत तक सीमित नहीं है, लेकिन वहाँ के आदमी यहाँ के मनुष्यों को देवमानव कहते थे। देवमानव क्यों कहते थे? वे किसके बने हुए था? वे हाड़-मांस के बने हुए थे। वे क्या खाते थे? यही दाल-रोटी खाते थे। कपड़ा क्या पहनते थे? यही सूत के, ऊन के कपड़े पहनते थे। फिर देवमानव कैसे हुए?

मित्रो! देवमानव इसीलिए हुए कि उनका भीतर वाला हिस्सा, जिसको हम अंत:करण कहते हैं, बहुत मजबूत और बलवान था। यह कैसे हो गया? इसलिए हो गया कि उन्होंने माँ का दूध पिया था। जिनको माँ का दूध नहीं मिलता

है, वे कमजोर होते हैं। आपको मालूम नहीं है कि यूरोप और अमेरिका में बहुत-सी महिलाएँ ऐसी हैं, जो अपने बच्चों को पालना नहीं चाहतीं और अनाथालय के सुपुर्द कर देती हैं।

अनाथालय में वहाँ की सोशल वेलफेयर स्टेट है, जो प्रत्येक बच्चे की जिम्मेदारी उठाती है। प्रत्येक बच्चे को खाना भी मिलता है। कपड़ा भी मिलता है। पढ़ाई भी मिलती है। हर चीज का इंतजाम मिलता है, पर एक चीज नहीं मिलती। क्या चीज नहीं मिलती? माँ का दुलार और माँ का दूध नहीं मिलता। आदमी के जो रसायन बच्चे के शरीर में हैं, वही माँ के शरीर में हैं। उससे बेहतर दूध और किसी का नहीं हो सकता। उससे बढ़िया दुलार दुनिया में कोई नहीं कर सकता। इतना गहरा दुलार न कोई नर्स कर सकती है, न दाई कर सकती है, न बीबी कर सकती है। इतना गहरा दुलार और इतना उपयोगी दुलार जितना कि माँ करती है, कोई इतना दुलार नहीं कर सकता।

क्या विशेषताएँ होती हैं देवताओं में

मित्रो! प्राचीनकाल के हमारे पूर्वपुरुष माता का दूध पीते थे और दूध पीकर के उनका न केवल शरीर, बल्कि अंत:करण भी इतना बलवान होता था कि वे देवमानव कहलाते थे। किसलिए देवमानव कहलाते थे? देवमानव इसलिए कहलाते थे कि उनकी विशेषताएँ देवताओं जैसी थीं। क्या विशेषताएँ होती हैं देवताओं में? देवताओं में एक विशेषता यह होती है कि वे बुड्ढे नहीं होते, जवान रहते हैं।

इसका नाम है—अजर-अमर होना, सुना है आपने? अजर माने जिनको बुढ़ापा न आता हो। देवता बुड्ढे नहीं होते थे। मरते थे? हाँ मरते तो थे, पर बुड्ढे नहीं होते थे; क्योंकि वे जिस माँ का दूध पीते थे, वह हमारी माँ ऐसी थी कि जिसका दूध पीकर के कोई बुड्ढा नहीं होता था। आज भी कोई बात, लड़ाई-झगड़ा हो जाता है और चैलेंज करते हैं तो कहते हैं कि यदि माँ का दूध पिया हो, तो यह काम करके दिखा दे। माँ के दूध में विशेषता है। वह अमृत है और उस अमृत को हमारे पूर्वपुरुषों ने पिया था और पीने के बाद में देवमानव हो गए थे। जवानी उनके मरते दम तक बनी रहती थी। नहीं साहब! गलत बात है। जवानी मरते दम तक नहीं बनी रह सकती। आप शक न करें।

मित्रो! मरना हर आदमी के लिए आवश्यक है। मरेगा तो हर आदमी; क्योंकि नेचर अपना काम करेगी, लेकिन बुढ़ापा आदमी का बुलाया हुआ है। शरीर के बाल सफेद हो जाने से कोई बुड्ढा नहीं होता। बुड्ढा उसे कहते हैं जिसने अपना साहस गँवा दिया, जिसने अपनी हिम्मत गँवा दी; जिसने अपने भविष्य की आशा और उमंगें गँवा दीं, वे सब आदमी बुड्ढे हैं। हमारे पुराने बुजुर्ग बुड्ढे नहीं होते थे।

बुड्ढे न केवल उन्हें कहते हैं जो निराश हैं, बल्कि बुड्ढे उन्हें कहते हैं, जो हँस नहीं सकते और हँसा नहीं सकते। जो मनहूस के तरीके से हर समय चिंता में डूबे रहते हैं। जिनके मस्तिष्क में हर समय टेंशन, खीझ और नाखुशी छाई रहती है। मनहूस के तरीके से चेहरा फुलाए रहते हैं,

कर्त्तव्य और धर्म का अंकुश परमात्मा ने हमारे ऊपर इसलिए रखा कि हम सन्मार्ग से भटकें नहीं। इन नियंत्रणों को तोड़ने की चेष्टा करना अपने और दूसरों के लिए महती विपत्तियों को आमंत्रित करने की मूर्खता करना ही गिना जाएगा।

उनको हम क्या कह सकते हैं। देवमाता थी हमारी, जो आदमी को हँसना सिखाती थी और हँसाना सिखाती थी। ऐसे थे हमारे बुजुर्ग।

देना जानते हैं देवता

मित्रो! देवताओं के अंदर एक और विशेषता होती है। क्या विशेषता होती है? देवता देना जानते हैं। और जो देवता नहीं हैं, वे हर जगह से सिर्फ एक ही फिराक में रहते हैं कि हम कहाँ से लें। किसके यहाँ हमको जाना चाहिए। माँ से हमको क्या लेना चाहिए। बाप की जागीर में से हमको कितना हिस्सा मिलना चाहिए। सास से हमको क्या मिलना चाहिए। ससुर से हमको क्या मिलना चाहिए। औरत से हमको क्या मिलना चाहिए। दोस्तों से हमको क्या मिलना चाहिए।

हर आदमी से मिलने-ही-मिलने की ख्वाहिशें करते रहते हैं। देने की नहीं सोचते, मैं क्या कहूँ। बात आप पर लागू हो जाएगी, तो आप नाराज भी हो सकते हैं। इसलिए मैं बात ज्यादा नहीं बढ़ाना चाहता। मैं यह कहना चाहता हूँ कि देवता उन्हें कहते हैं, जो देना जानते हैं। जिन्होंने देना सीखा है। पैसा जिसके पास न हो तो क्या देगा? अरे बाबा! क्या आपसे मैं पैसे की बात कह रहा हूँ मैं तो श्रम की बात कह रहा हूँ। समय की बात कह रहा हूँ। मुहब्बत की बात कह रहा हूँ। प्रोत्साहन की बात कह रहा हूँ और न जाने क्या-क्या बात कह रहा हूँ।

मित्रो! अगर आपके पास पैसा नहीं है, तो आपको शरमिंदा होने की कोई जरूरत नहीं है, निराश होने की कोई जरूरत नहीं है। गांधी जी के पास कोई पैसा नहीं था। बुद्ध के पास कोई पैसा नहीं था। ऋषियों के पास कोई पैसा नहीं था, लेकिन पैसा न होते हुए भी उन्होंने समस्त विश्व के लिए इतना ज्यादा जो अनुदान दिए हैं, जिसका एहसान हम कभी भी भूल नहीं सकते हैं। आप भी ऐसा कर सकते हैं। हमारी वह माँ देवमाता थी, जिसको मैं गायत्री माता कहता हूँ। जिसके लिए आपने शक्तिपीठ बनाई हैं, जिसका मैं उद्घाटन करने के लिए आया हूँ। जिस माता के चरणों पर मैंने अपनी लंबी जिंदगी को समर्पित कर दिया और आप लोगों से यह प्रार्थना करने आया हूँ कि आप लोगों के लिए भी यदि संभव हो सके तो उसका दूध पीने की कोशिश करें, ताकि आप देवमानव बन सकें।

देवमाता, वेदमाता, विश्वमाता

मित्रो! गायत्री को देवमाता कहते हैं, वेदमाता कहते हैं और विश्वमाता कहते हैं। विश्वमाता की बाबत पीछे बताऊँगा कि इस दुनिया को किस तरीके से विश्व परिवार के रूप में परिणति करने वाली फिलॉसफी है यह, जिसमें हर आदमी को मालूम पड़ता है कि हम एक बड़े विशाल संसार के मेंबर हैं और हम एक बड़ी फेमिली के एक रिश्तेदार हैं।

आज हर आदमी अपने आप में अलग बैठा हुआ है। अलग-थलग हो गया है। आज हर आदमी इक्कड़ है। आप कभी जंगल में गए नहीं हैं। वहाँ जानवर इक्कड़ होते हैं। इक्कड़ कैसे होते हैं? जो झुंड से अलग हो जाते हैं। मसलन कई बार सूअर इक्कड़ पाए जाते हैं और अलग ही रहते हैं। वे झुंड में नहीं रहते। हाथी भी कई बार इक्कड़ पाए जाते हैं। वे झुंड में नहीं रहते, अकेले ही रहते हैं। कई बार हिरन भी इक्कड़ पाए जाते हैं, झुंड में नहीं रहते, अकेले रहते हैं।

जो अकेले रहते हैं, वे बड़े खौफनाक होते हैं। शिकारी उनको देखकर ही चौकन्ने हो जाते हैं। इक्कड़ हिरन को देखकर काँप जाते हैं। वे अपनी गोली को ठीक करते हैं और कहते हैं कि इक्कड़ हिरन से अब हमको मुकाबला करना पड़ेगा। जो सूअर इक्कड़ होते हैं, बाकी जानवर घास खाते हैं और छाया में बैठे रहते हैं, पर इक्कड़ सूअर आता है और अपने पैने वाले दाँत उनके पेट में घुसेड़ देता है और मारकर पटक देता है। इक्कड़ बहुत खतरनाक होता है।

मित्रो! इक्कड़ किसे कहते हैं? इक्कड़ उसको कहते हैं, जिसको स्वयं की अपनी खुदगर्जी, मैं; मुझे पैसे वाला बनना चाहिए; मुझे मालदार बनना चाहिए; मेरे बेटे को बादशाह होना चाहिए; मुझे इज्जत मिलनी चाहिए और समाज को? समाज को जहन्नुम में जाना चाहिए। पड़ोसी को? पड़ोसी को जहन्नुम में जाना चाहिए। यह कौन आदमी है? यह इक्कड़ आदमी है। इक्कड़ आदमी समाज के लिए बड़े नुकसानदायक होते हैं। इक्कड़ बड़े खौफनाक होते हैं। इक्कड़ बड़े खतरनाक होते हैं। वे अपने लिए भी होते हैं और सारे समाज के लिए होते हैं।

हमारी गायत्री माता कभी विश्वमाता थी। ऐसी शानदार विश्वमाता थी, जो हमको विश्व परिवार की भावना, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना सिखाती थी। जिसका परिणाम आपने देखा। हिंदुस्तान में जिन लोगों के पास भी विद्या थी, वे अपनी विद्या को लेकर न जाने कहाँ-से-कहाँ चले गए। चार सौ मील लंबे रेगिस्तान को पार करके चाइना चले गए; मंचूरिया चले गए; मंगोलिया चले गए। उन स्थानों पर चले गए, जहाँ कि आज भी जाना मुश्किल पड़ता है। हिंदुस्तान की सीमा को पार करके टूटी-फूटी नावों में सवारी करके अमेरिका जा पहुँचे।

अमेरिका में आप कैलिफोर्निया का इलाका देखिए। बहुत सारे इलाके देखिए। वहाँ भारतीय सभ्यता और संस्कृति, जिसके बारे में अब पता लगा है। पहले कहते थे कि कोलंबस ने तलाश किया, जहाँ रेड इंडियन्स रहते थे। अब मालूम पड़ा कि वहाँ मय सभ्यता थी। मय नाम का एक दानव था, वह वहाँ चला गया और बस गया। आप सूर्य के मंदिर देख लीजिए। हिंदुस्तानी कलेंडरों के जैसे बेहतरीन नुस्खे वहाँ पाए गए हैं। हिंदुस्तान में भी वही पाए गए। लोग न जाने कहाँ-से-कहाँ चले जाते थे।

मित्रो! वे कौन थे? वे लोग 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को लेकर के गए कि हमारे पास जो भगवान ने दिया है, उसे हम बाँटें। जहाँ कहीं भी गरीब रहते हैं, पिछड़े रहते हैं, हारे हुए रहते हैं, थके हुए रहते हैं, उनको हमको बाँटना चाहिए। ऐसी थी हमारी गायत्री माता, जो विश्वमाता कहलाती थी और विश्वमाता हर नागरिक को यह कहती थी कि हम एक ही माँ के बच्चे हैं। हम सहोदर हैं।

आप बड़े हैं, तो अकेले खाने का हक नहीं है। आप कमा तो सकते हैं, पर छोटे भाई-बहनों का क्यों ख्याल नहीं करते। छोटे भाई-बहनों को पढ़ाएँगे नहीं? बहन का ब्याह नहीं करेंगे? आप बड़े हैं, तो इसका मतलब यह हो गया कि आपको औरों का भी ध्यान रखना चाहिए। विश्वमाता अपने बड़े बेटों से कहती थी कि जो भी अक्लमंद हैं, जो भी समझदार हैं, जो भी बुद्धिमान हैं, वे अपने से गए-गुजरे लोगों को, पिछड़े लोगों को, हारे हुए लोगों को, थके हुए लोगों को, हैरान हुए लोगों को उठाने में मदद करें। यह थी विश्वमाता, जो हमारी फिलॉसफी हमको सिखाती थी। वह देवमाता थी, वेदमाता थी।

[क्रमशः अगले अंक में समापन]

अँधेरी रात थी। पौयर्ग आलवार नामक संत अपनी कुटिया में लेटे थे और भगवान के ध्यान में निमग्न थे। तभी उन्हें बाहर से आवाज आई—"रात भर के लिए भीतर आश्रय मिल सकता है क्या?" संत ने उत्तर दिया—"अवश्य! इस कुटिया में एक के लेटने की जगह, पर दो के बैठने का स्थान है। आइए हम दोनों बैठ कर भगवत् चर्चा करें।" आगंतुक अंदर आए और सत्संग होने लगा। तभी पुनः आवाज आई—"रात भर के लिए एक व्यक्ति को स्थान मिल सकता है क्या?"

संत ने प्रसन्न होकर उत्तर दिया—"अवश्य! कुटिया में दो के बैठने, पर तीन लोगों के खड़े होने का स्थान है। आइए हम तीनों खड़े होकर प्रभु का ध्यान करें।" तीसरे आगंतुक के अंदर प्रवेश करते ही कुटिया में दिव्य प्रकाश फैल गया। संत आलवार के समक्ष साक्षात् भगवान नारायण खड़े थे। पहले भेजे गए आगंतुक उनकी लीला का ही रूप थे।

भगवान बोले—"वत्स! तुम्हारी भक्ति सफल हुई। दूसरों के लिए अपने हृदय का द्वार सदा खुला रखकर तुमने सिद्ध कर दिया है कि मेरे द्वार भी तुम्हारे लिए सदैव खुले रहेंगे। बोलो तुम्हें कौन-सा वर चाहिए?" संत आलवार बोले—"प्रभु! आपके दर्शन के बाद अब क्या इच्छा शेष रह जाएगी। बस, ये ही आशीर्वाद दें कि आपकी भक्ति कभी न छूटे।" भक्ति के इन्हीं सूत्रों को उन्होंने 'ज्ञान के प्रदीप' नामक छंदों में लिपिबद्ध किया। भक्त की भक्ति निस्स्वार्थ समर्पण से फलती है, याचकों की तरह माँगने से नहीं।

विषमताओं को सौभाग्य में बदलता विश्वविद्यालय

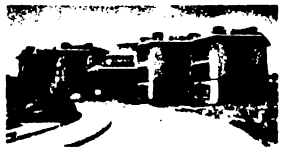

आँवलखेड़ा की छोटी-सी साधना कोठरी से प्रारंभ हुई यात्रा देखते-देखते एक विशालकाय विराट, विस्तृत गायत्री परिवार का स्वरूप आज ले चुकी है। इतने लंबे व गौरवशाली कालखंड का मूल्यांकन करते समय में इस बात को कोई सहजता से अनुभव कर सकता है कि इतने विराट परिवार को एक ईश्वरीय उद्देश्य के लिए साथ-साथ नियुक्त करना और उसको अनवरत उसी दिशा में गतिशील रखना सामान्य संकल्प का अंग नहीं हो सकता।

निश्चित रूप से गायत्री परिवार की यात्रा एक दैवी यात्रा है, जिसकी स्थापना के पीछे का उद्देश्य प्रत्येक मनुष्य के अंदर उपस्थित दैवी संभावनाओं का जागरण करना एवं इस मानव समुदाय को स्वर्गीय वातावरण से आभूषित करना है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना भी उसी बृहत्तर उद्देश्य की परिपूर्ति के लिए हुई है—ऐसा सोचने, कहने अथवा लिखने में किसी तरह की शंका की आवश्यकता नहीं है।

वर्तमान परिस्थितियाँ निश्चित रूप से ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जिनमें संपूर्ण मानवता एक गहन अवसाद और सामूहिक परीक्षा के क्रम से गुजर रही है। परीक्षा इस बात की हो रही है कि इन चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में जब पूरा विश्व ही संक्रमण के आतंक से भयोन्मत्त है तो ऐसे में अपने चिंतन की स्थिरता और भावनाओं की प्रगाढ़ता को कौन सुरक्षित रख पाता है ?

बाहरी दृष्टि से देखें तो मनुष्य भी जानवरों के समकक्ष ही दिखाई पड़ता है। यहाँ तक कि वैज्ञानिक दृष्टि से समीक्षा करने पर इनसान और इनसान के निकटवर्ती विकासक्रम में सहयोगी प्राणी चिंपांजी के मध्य 0.1 प्रतिशत जेनेटिक क्रम का अंतर आता है, परंतु भावनाओं की दृष्टि से देखें तो इनसान और जानवर, दो अलग छोरों पर खड़े दिखाई पड़ते हैं। वह जो 0.1 प्रतिशत का अंतर है, वह अंतर इनसानियत का अंतर है। इनसानियत जिनके पास होती है, वे ही कठिन समयों में मानव धर्म का निर्वहन कर पाते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव के इसीलिए गायत्री परिवार के निहित उद्देश्यों में से एक उद्देश्य पीड़ा और पतन का निवारण वाला था। इस विषम समय में देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने उसी लक्ष्य को अपने मुख्य कर्त्तव्य पथ के रूप में निर्धारित किया है और शांतिकुंज के साथ मिलकर शांतिकुंज चिकित्सालय में कोविड केयर हेतु हाई डिपेन्डेंसी यूनिट के निर्माण का कार्य प्रारंभ किया।

इसके साथ-साथ ही विश्वविद्यालय ने भारत में विभिन्न स्थानों पर वहाँ की स्थानीय गायत्री परिवार की शाखाओं के साथ मिलकर मेडिकल किट को बाँटने का, ऑक्सीजन कंसन्ट्रेटर को पहुँचाने का, सेनेटाइजर को पहुँचाने का, भोजन बाँटने का एवं एंबुलेंस इत्यादि की व्यवस्था बनाने का कार्य भी किया।

आपत्तियाँ संसार का स्वाभाविक धर्म हैं। वे आती हैं और सदा आती रहेंगी। उनसे न तो भयभीत होइए और न भागने की कोशिश करिए; बल्कि अपने पूरे आत्मबल, साहस और शूरता से उनका सामना कीजिए। उन पर विजय प्राप्त कीजिए और जीवन में बड़े-से-बड़ा लाभ उठाइए।

इन व्यवस्थाओं को बनाने के अतिरिक्त देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने यह भी सुनिश्चित किया कि इस कठिन घड़ी में उसके विद्यार्थी अपनी शिक्षा के क्रम से वंचित न हों और इन विषम परिस्थितियों में भी (ऑनलाइन) सत्रांत परीक्षाएँ पूरी मुस्तैदी के साथ संपन्न हुईं। विश्वविद्यालय के द्वारा प्रदत्त गुणों का ही यह प्रभाव कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों ने इस कठिन वेला में भी सम्मिलित प्रयास से एक ऑनलाइन दीपयज्ञ को संपन्न कराया, जिसका उद्देश्य उन आत्माओं की सद्गति के लिए प्रार्थना करना था, जो कोरोना की इन विषम परिस्थितियों में काल-कवलित हुए। ❑

अपनों से अपनी बात

साधना सत्रों की भूमि शांतिकुंज

सांसारिक व्यवस्था में जिस तरह की शिक्षा-व्यवस्था को प्रदान करने का क्रम रहा है, उसका उद्देश्य तो मात्र एक ही है—जीविकोपार्जन। पढ़ने वाले को पैसा कमाने लायक बना दिया जाए, इसके अतिरिक्त उन प्रयासों का कोई अन्य लक्ष्य नजर नहीं आता है। यह ठीक है कि उस शिक्षा का भी अपना एक महत्त्व है, परंतु व्यक्तित्व के विकास, अच्छा इनसान बनने का, परिष्कृत मानव बनने का महत्त्व एवं प्रभाव उस प्रक्रिया से कई गुना ज्यादा एवं व्यापक हो जाता है। पढ़-लिखकर उच्च ओहदों को प्राप्त करने वाले तो अनेकों देखे जाते हैं, परंतु बुद्ध, महावीर, परमपूज्य गुरुदेव जैसे व्यक्तित्व तो विरले ही निकल पाते हैं।

व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास एक महत्त्वपूर्ण विषय है। प्रश्न उठता है कि इसे कैसे प्रदान किया जाए? यदि मात्र प्रवचन, उद्बोधन दे देने एवं सुन लेने भर से ऐसे व्यक्तित्व तैयार होते तो आज तक न जाने कितने महामानव तैयार हो गए होते, पर क्या ऐसा हो पाता है?

ऐसे देवमानव आज कहाँ देखने को मिल पाते हैं, जो समाज के समुन्नत विकास का आधार बन सकें? प्रचलित शिक्षापद्धति से ऐसे महापुरुषों का निर्माण संभव नहीं है; क्योंकि ऐसा कर पाने के लिए स्वयं के परिष्कार की, उपयुक्त वातावरण की, सशक्त मार्गदर्शन की एवं दैवी संरक्षण की आवश्यकता होती है।

इन कारकों को उपलब्ध कराए बिना अनगढ़ को सुगढ़ बना पाना, मानव को महामानव बना पाना संभव ही नहीं है। व्यक्ति के गुण, कर्म एवं स्वभाव को नए सिरे से गढ़ने के लिए इन सभी तत्त्वों एवं कारकों का उपस्थित एवं उपलब्ध होना उतना ही जरूरी है, जितना कि एक बीज को वृक्ष बनाने के लिए खाद, पानी, धूप जैसे महत्त्वपूर्ण कारकों का होना जरूरी हो जाता है।

मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वांगीण परिष्कार इसलिए जरूरी हो जाता है; क्योंकि मानव की वास्तविक सत्ता उसका अंतरंग है, बाह्य कलेवर नहीं। बिना जड़ों के पेड़ का खड़ा रह पाना संभव नहीं हो पाता—उसी तरह से बिना व्यक्तित्व के इनसान का मूल्य एवं आधार, दोनों ही शून्य हो जाते हैं। साधन, वैभव, जीवन की चमक-दमक पिछले जन्म के पुण्यों के आधार पर मिल भी जाएँ तो बिना व्यक्तित्व की सुदृढ़ता के बाहर की चमक-दमक भी थोड़े दिन का जलवा बिखेरकर गायब हो जाती है। दुर्भाग्यवश लोग बाहर के कलेवर को ही सब कुछ मानने की भूल कर बैठते हैं, परंतु बिना अंत:करण की शुद्धि के प्राप्त सारी सफलताएँ अंतत: धराशायी ही होती हैं।

यह तो तय ही है कि मनुष्य की वास्तविक संपदा उसका व्यक्तित्व ही है, पर इसका परिष्कार किसी प्रयोगशाला के उपकरण के द्वारा कर पाना तो संभव नहीं है। इसका विकास मात्र ज्ञानवृद्धि से भी संभव नहीं है; क्योंकि यदि वैसा संभव हो पाता होता तो स्कूल-कॉलेज अकेले ही अनेक महामानव गढ़ देते। मात्र धर्मोपदेश से भी ऐसा कर पाना संभव नहीं है, नहीं तो अनेक लोग जगरातों से लेकर कथा-कीर्तनों में बैठे-सुनते देखे गए हैं, फिर वे महामानव क्यों नहीं बन सके?

इसका कारण यह है कि व्यक्तित्व का आधार मान्यताएँ एवं आदतें हैं। उनको सुधारे बिना कोरी शिक्षा को दे देने भर से कोई बदलता नहीं और बदल सकता नहीं। अंत:करण में कुसंस्कारों की परतें जमी बैठी हों तो बाहर की धुलाई कितनी देर के लिए काम आने वाली है? इसी कारण सुने गए उपदेश बहुत देर तक अपना प्रभाव नहीं छोड़ पाते हैं।

यहाँ तक कि उपदेश देने वाले स्वयं भी, थोड़े दिन के बाद अपने कहे से विपरीत आचरण करते दिख जाते हैं। इन सब बातों को कहने का आशय मात्र इतना है कि जब तक अंतर्मन पर पड़ी कुसंस्कारों की परत को हटाकर उनके स्थान पर उच्चस्तरीय सत्प्रवृत्तियों का बीजारोपण न किया जा सके, तब तक बाहर से थोपा गया कोई भी परिवर्तन स्थायी एवं प्रभावी नहीं हो सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा शांतिकुंज में चलाए गए 9 दिवसीय साधना सत्रों का उद्देश्य वस्तुस्थिति में ये ही है।

यहाँ 9-9 दिन के साधना सत्र अनवरत चलते रहते हैं। 1 से 9, 11 से 19, 21 से 29 तारीखों के मध्य चलने वाले इन शिविरों में प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में शिविरार्थी भाग लेते, जीवन के लिए आवश्यक मार्गदर्शन प्राप्त करते एवं वापस अपने क्षेत्रों में लौटकर अभूतपूर्व कार्यों को अंजाम देते देखे जा सकते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा इन्हें संजीवनी विद्या सत्र कहकर के पुकारा गया। शरीर यथावत् रहे, पर चेतना परिष्कृत हो जाए तो व्यक्तित्व समुन्नत हो जाता है। इसी को संजीवनी विद्या कह करके पुकारा गया है। परमपूज्य गुरुदेव द्वारा बताए गए इस संजीवनी विद्या के ज्ञान के द्वारा मनुष्य के तीनों शरीरों के कायाकल्प का प्रयास शांतिकुंज में किया जाता है। इन शिविरों की दिनचर्या इसी साधनात्मक आधार पर गढ़ी गई है और इनका अनुशासन इस प्रकार रखा गया है कि शांतिकुंज के इस सुसंस्कारित वातावरण में साधक, इस साधनात्मक पुरुषार्थ के अंतिम शिखर को उपलब्ध हो सके।

अखण्ड ज्योति के पाठक शांतिकुंज के आश्रम, आरण्यक स्वरूप से परिचित ही हैं। गंगा की गोद, हिमालय की छाया, सप्तर्षियों की तपोभूमि वाला यह क्षेत्र—अखंड दीपक के सान्निध्य में ऐसी तप-ऊर्जा को अपने भीतर समेटे हुए है, जिसके संसर्ग में आने वाले प्रत्येक साधक के जीवन में विलक्षण परिवर्तन घटते हैं। फिर परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी के दैवी संरक्षण की उपस्थिति और उनकी तपस्या का प्राण-प्रवाह इन साधना सत्रों की अवधि में साधकों के जीवन की समस्त समस्याओं का समूह निराकरण कर देता है।

ये ही वो आधार हैं, जो इन संजीवनी साधना सत्रों में भाग लेने वालों के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन संपन्न कर देते हैं। प्रशिक्षण तब ही प्रभावी होता है, जब वातावरण उसके उपयुक्त हो। जहाँ लड़ाई-झगड़ा मचा हो, वहाँ-शांति, शीतलता की बातें कैसे प्रभावी हो सकती हैं? शांतिकुंज का सतयुगी वातावरण अपने आप ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है, जिनसे व्यक्तित्व परिष्कार की साधना स्वत: संपन्न हो जाती है।

वस्तुस्थिति में जीवन-साधना से बढ़कर दूसरा कोई सौभाग्य है नहीं, वो सारी विभूतियाँ जो इनसान को आध्यात्मिक उत्कर्ष की ओर ले जाती हैं—वो इसी पथ पर चलने से मिल पानी संभव हैं। उन्हीं को प्राप्त करने हेतु ये सत्र शांतिकुंज की पावन भूमि पर चलाए जा रहे हैं। अपने सभी परिजनों का यहाँ इसी भावभूमि के साथ स्वागत है। ❑

राजा वृषमित्र से मिलने ऋषि प्रकीर्ण पहुँचे। राजा ने ऋषि को अपना राजकोश दिखाया। खजाने में अनेकानेक हीरे-मोती थे। ऋषि ने राजा से प्रश्न किया—''महाराज! इन हीरे-जवाहरातों से आपको कितनी आय होती है?'' राजा ने उत्तर दिया—''ऋषिवर! इनसे कुछ आय तो नहीं होती, पर इनकी सुरक्षा में व्यय जरूर होता है।'' ऋषि प्रकीर्ण राजा वृषमित्र को एक गरीब किसान की झोंपड़ी में ले गए और वहाँ रखी चक्की दिखाते हुए बोले—''महाराज ! मणि-माणिक्य भी पत्थर हैं और यह चक्की भी, पर चक्की पीसती है तो उससे पूरे परिवार का पोषण होता है। झूठे अहंकार की रक्षा के लिए रखे गए हीरे-जवाहरात राज्य की संपदा पर भार हैं, पर यह छोटी-सी चक्की बड़ी उपयोगी है। यदि तुम्हारा धन परमार्थ में लगेगा तो यश-कीर्ति का कारण बनेगा और स्वार्थ में लिप्त होगा तो पतन का द्वार बनेगा।'' ऋषि के कहे का अर्थ राजा की समझ में आ गया और उन्होंने परमार्थ के पथ पर चलने का निश्चय किया।

लक्ष्य की याद

यह वैश्विक आपदा मनुज का दंभ मिटाने आई है,
जीवन के वास्तविक लक्ष्य की याद दिलाने आई है।
धर्मक्षेत्र ने, राजनीति ने, अहंकार विकसाया है,
धन-पद-लिप्सा ने मानव को स्वार्थी बहुत बनाया है,
इससे वह पूरे समाज के लिए बना दुःखदायी है।
जीवन के वास्तविक लक्ष्य की याद दिलाने आई है।
मानव ने हर सुख केवल अपने ही लिए सहेजा है,
भूल गया, किसलिए यहाँ ईश्वर ने उसको भेजा है,
यही बात आपदा हमें फिर से समझाने आई है।
जीवन के वास्तविक लक्ष्य की याद दिलाने आई है।
गुरु ने हमको दुलराया था, अपनी गोद बिठाया था,
हम सब उनका काम करेंगे, यह विश्वास जताया था,
किंतु ज्ञान की व्यर्थ अहंता मन में आज समायी है।
जीवन के वास्तविक लक्ष्य की याद दिलाने आई है।
गुरु ने हमें जड़ों से जोड़ा, हमें सुदृढ़ आधार दिया,
ईश्वरीय योजना के लिए ज्ञान दिया, सुविचार दिया,
किंतु उन्हीं का क्षय करने की हमने बात चलाई है।
जीवन के वास्तविक लक्ष्य की याद दिलाने आई है।
जाने कहाँ-कहाँ से गुरुवर ने प्रतिभाएँ जोड़ी हैं,
किंतु अहंतावश कुछ ने निर्दिष्ट दिशाएँ छोड़ी हैं,
अलग राग गाने को हमने ढपली अलग बजाई है।
जीवन के वास्तविक लक्ष्य की याद दिलाने आई है।
वे सब होंगे इस संकट में लुप्तप्राय उन लाखों में,
अहंकारवश परमेश्वर का काम न है जिन आँखों में,
महाकाल से अलग जिन्होंने अपनी राह बनाई है।
जीवन के वास्तविक लक्ष्य की याद दिलाने आई है।

—शचींद्र भटनागर

देवप्रयाग (उत्तराखंड) में प्राकृतिक आपदा में राहत कार्य हेतु देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं शांतिकुंज के आपदा राहत दलों का प्रस्थान

विश्व पर्यावरण दिवस पर युगतीर्थ शांतिकुंज में श्रद्धेय द्वय द्वारा वृक्ष पूजन एवं कार्यकर्त्ताओं द्वारा वृक्षारोपण

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-07-2021
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

विश्व पर्यावरण दिवस पर युगतीर्थ शांतिकुंज में श्रद्धेय द्वय द्वारा वृक्ष पूजन एवं कार्यकर्त्ताओं द्वारा वृक्षारोपण

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565-2403940, 2402574, 2412272, 2412273 मोबा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org